अथ सृष्टि उत्प त्त व्याखयास्याम्

MARCH 12, 2016 9 COMMENTS

अथ सृष्टि उत्प त्त व्याखयास्याम्

– शवनारायण उपाध्याय

वैदिक वाङ्मय में इस वषय पर कई स्थानों पर वचार कया गया है। ऋग्वेद, मुण्डकउपनिषद्, तै त्तरीयउपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, छान्दोग्यउपनिषद् तथा बृहदारण्यकउपनिषद् में इस वषय पर वस्तार से वचार कया गया है। इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर मैं भी इस वषय पर पूर्व में छः लेख लख चुका हूँ। एक बार पुनः इसी वषय को लखने का उपक्रम इस लए करना पड़ रहा है क आर्य समाज के ही प्र सद्ध संन्यासी स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती आन्ध्रप्रदेश ने माह जून 2015 में 'वैदिकपथ' पत्रिका में एक लेख प्रका शत करवाया है, जिसमें सृष्टि की आयु के स्वामी दयानन्द सरस्वती के निर्णय का वरोध कया है।

सृष्टि की उत्प त्त के वषय में वज्ञान का मानना तो यह है क सृष्टि की उत्प त्त Big Bang (भयंकर वस्फोट) के साथ ही प्रारमभ हुई और परिवर्तन के कई चरणों से गुजरती हुई वर्तमान स्थिति में पहुँची है। Big Bang के साथ ही आकाश और समय का कार्य प्रारमभ हुआ। सृष्टि उत्प त्त का क्रम इस प्रकार रहा- आकाश, ज्वलनशील वायु, अग्नि, जल और निहारिका का मण्डल। निहारिका मण्डल में ही सौर मण्डलों ने स्थान पाया। पृथ्वी की उत्प त्त सूर्य से छिटक कर अलग होने के बाद धीरे-धीरे परिवर्तित होकर वर्तमान रूप में हुई। श्वास लेने योग्य वायु के बनने, पानी के पीने योग्य होने पर पानी के अन्दर सर्वप्रथम जलचरों को जीवन मला। फर क्रमशः जल-स्थलचर, स्थलचर और आकाशचर प्रा णयों की उत्प त्त हुई। सृष्टि उत्प त्त के पूर्व क्या था? इस वषय में वज्ञान का कहना है क Big Bang के बाद ही सृष्टि नियम वक सत हुए हैं और उनके आधार पर हम घो षत कर सकते हैं क भ वष्य में कब क्या होगा और वे घोषणाएँ सब सत्य सद्ध हो रही हैं, अतः हमें Big Bang के पूर्व की स्थिति को जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके अज्ञान से हमारे वैज्ञानिक कार्य पर कोई भी प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। अस्तु।

वैज्ञानिक वचार धारा पर संक्षेप में वर्णन कर देने के उपरान्त अब हम इस वषय पर वैदिक वाङ्मय के वचार पाठकों के सामने रखने का प्रयास कर रहे हैं। वैदिक वाङ्मय में सृष्टि उत्प त्त के पूर्व की स्थिति का वर्णन भी कया गया है। पाठकों के लए नासदीय सूक्त के मन्त्र दिये जा रहे हैं-

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमाऽपरोयत्।

कमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नभः कमासीद्गहनं गभीरम्।।

-ऋग्वेद 10.129.1

अर्थ- (नासदासीत्) जब यह कार्य सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी, तब एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर और दूसरा जगत् का कारण वद्यमान था। असत् शून्य नाम आकाश भी उस समय नहीं था क्यों क उस समय उसका व्यवहार नहीं था। (ना सदासीत्तदानीम्) उस काल में सत् अर्थात् सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण मलाकर जो प्रधान कहाता है, वह भी नहीं था। (नासीद्रजः) उस समय परमाणु भी नहीं थे तथा (नो व्योमाऽपरोयत्) वराट अर्थात् जो सब स्थूल जगत् के निवास का स्थान है, वह (आकाश) भी नहीं था। (कमावरीव.......गभीरम्) जो यह वर्तमान जगत् है, वह भी अत्यन्त शुद्ध ब्रह्म को नहीं ढँक सकता है और उससे अ धक वा अथाह भी नहीं हो सकता है, जैसे कोहरे का जल पृथ्वी को नहीं ढँक सकता है तथा उस जल से नदी में प्रवाह नहीं आ सकता है और न वह कभी गहरा अथवा उथला हो सकता है।

तम आसीत्तमसा गुलमग्रेऽप्रकेतं स लतं सर्वमा इदम्।

तुच्छ्येनाव पहितं यवासीत्तपसस्तन्माहिना जायतैकम्।।

– ऋ. 10.129.3

अर्थ- उस समय यह जगत् अन्धकार से आवृत, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाशरूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सममुख एकदेशी आच्छादित तथा पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारण रूप से कार्य रूप में कर दिया।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः कं चनास।।

– ऋ. 10.129.2

सृष्टि के पूर्व प्रलयकाल में मृत्यु नहीं थी, मृत्यु के अभाव में अमरता भी नहीं थी। न मारक शक्ति के वपरीत अमृत अथवा सब जीव मुक्तावस्था में थे, ऐसा भी नहीं कह सकते। रात्रि एवं दिन का प्रज्ञान भी नहीं था। उस समय केवल वायु की अपेक्षा न रखने वाला सदा जाग्रत ब्रह्म ही था। उस समय उससे भन्न, उसके समान अथवा उससे अ धक कुछ भी नहीं था। प्रकृति ऊर्जारूप में परिवर्तित होकर अव्यक्त थी।

 फर सृष्टि की उत्प त्त कैसे हुई, इस पर तै त्तरीय उपनिषद् का कहना है-

‘सो कामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत। यदिद कञ्च। तत सृष्टावा तदेवानु प्रा वशत्। तदनुप्र वश्य। सच्चत्यच्चयामवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च। निलयन चानिलयन च। वज्ञानं चा पज्ञानं च। सत्यं चानृतं च। सत्यमभवत। यदिद कञ्च। तत्सत्य मत्या चक्षते।

-तै.उप. ब्रह्मानन्दवल्ली अनुवाक 6

अर्थ- उसने कामना की क मैं एक से अनेक हो जाऊँ, तब उसने तप कया। क्रया का प्रारमभ हो गया। जब यह क्रया बढ़ते-बढ़ते उग्र रूप में पहुँची, तब उसे तप कहा गया। तप

के प्रभाव से यह सब वश्व सृजा गया। सबकी सृष्टि करके वह ब्रह्म सृष्टि में अनुप्र वष्ट हो गया। आगे वपरीत कणों का वर्णन भी कया गया है-

सत्व रजस्तमसा सामयावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभय मन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेयः स्थूल भूतानि पुरुष इति पञ्च वंशतिर्गण।।

अर्थ- सत्व, रज और तम रूप शक्तियाँ हैं। इन शक्ति रूपों की समावस्था, निश्चेष्ठावस्था प्रकट रूपावस्था को प्रकृति कहते हैं। प्रकृति से अहंकार, अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ तथा पञ्चतन्मात्राओं से पाँच स्थूलभूत, स्थूलभूतों से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन उत्पन्न होता है। पुरुष (चेतन सत्ता) इनसे भन्न हैं। इन 25 पदार्थों को जानना, समझना ववेक में आवश्यक है।

ऋग्वेद में सृष्टि उत्प त्त परमेश्वर ने इस प्रकार की है-

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मारइवाधमत्।

देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सद जायत।।

– ऋ. 10.72.2

प्रकृति और ब्रह्माण्ड के स्वामी परमेश्वर ने दिव्य पदार्थों के परमाणुओं को लोहार के समान धोंका, अर्थात ताप से तप्त कया है। वास्तव में इसी को वैज्ञानिकों ने भयंकर वस्फोट Big Bang कहा है। इन दिव्य पदार्थों के पूर्व युग, अर्थात् सृष्टि के प्रारमभ में अव्यक्त (असत्) प्रकृति से (सत्) व्यक्त जगत् उत्पन्न कया गया है। तै त्तरीयोपनिषद् ब्रह्मानन्दवल्ली के प्रथम अनुवाक में सृष्टि उत्प त्त का क्रम भी बताया गया है-

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः समभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृ थवी। पृ थव्या ओषधय। ओषधीयोऽन्नम् अन्नाद् रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।।

अर्थात् परम पुरुष परमात्मा से पहले आकाश, फर वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उत्पन्न हुई है। पृथ्वी से ओष धयाँ, (अन्न व फल फूल) ओष धयों से वीर्य और वीर्य से पुरुष उत्पन्न हुए, इस लए पुरुष अन्न रसमय है।

पृथ्वी की उत्प त्त सूर्य में से छिटक कर हुई है, इस पर कहा गया है-

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भूव आशा अजायन्त।

अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि।।

– ऋ. 10.72.4

अर्थ- पृथ्वी सूर्य से उत्पन्न होती है। पृथ्वी से पृथ्वी की दशा को बताने वाले भेद उत्पन्न होते हैं। प्रातःकालीन उषा से आदित्य उत्पन्न होता है, अर्थात् दृष्टि गोचर होता है और सांय कालीन उषा आदित्य से उत्पन्न होती है।

सृष्टि उत्प त्त पर वचार कर लेने पर अब सृष्टि की वर्तमान आयु पर वचार करते हैं। वर्तमान में सृष्टि का वर्णन Friedmann Model के अनुसार कया जाता है। इसमें Big Bang के साथ ही आकाश-समय निरन्तरता का जन्म हो जाता है, अर्थात् समय की गणना Big Bang के प्रारमभ होने के साथ ही शुरू हो जाती है। एक अमेरिकन वैज्ञानिक Edwin Hubble ने 9 व भन्न आकाश गंगाओं (Galaxies) की दूरी जानने का प्रयत्न कया। उसने बताया क हमारी आकाश गंगा तो अत्यन्त छोटी है, ऐसी तो करोड़ों आकाश गंगाएँ हैं। साथ ही उसने यह भी बताया क जो (Galaxy) हमसे जितना अ धक दूर है, उतनी ही अ धक तेजी से वह हम से दूर भागती जा रही है। उसने उनकी हमसे दूर होने की चाल की गति भी ज्ञात कर ली। फर इस सद्धान्त पर भी Big Bang के समय तो सब एक ही स्थान पर थे। उन्हें इतना दूर जाने में कतना समय लगा, उसका एक नियम भी खोज लया।

नियम है- V=HR. यहाँ V आकाश गंगा की हमसे दूर भागने की गति है, R आकाश गंगा की हमसे दूरी है और H Constant है। Edwin Hubble ने यह भी ज्ञात कया क कोई भी आकाश गंगा जो हमसे d दश लाख प्रकाश वर्ष की दूरी पर है, उसकी दूर हटने की गति 19d मील प्रति सैकण्ड है। अतः अब समय R=106 d प्रकाश वर्ष, T =106×365×24×3600×186000d वर्ष

19d×3600×24×365

=186×109=9.7×109वर्ष

19

Saint Augustine ने अपनी पुस्तक The City of God में बताया क उत्प त्त की पुस्तक के अनुसार सृष्टि की उत्प त्त ईसा से 500 वर्ष पूर्व हुई है।

बिशप उशर का मानना है क सृष्टि की उत्प त्त ईसा से 4004 वर्ष पूर्व हुई है और केब्रीज वश्व वद्यालय के कुलपति डॉ. लाइटफुट ने सृष्टि उत्प त्त का समय 23 अक्टूबर 4004 ईसा पूर्व प्रातः 9 बजे बताया है जो हास्यास्पद है। अब हम वैदिक वाङ्मय के आधार पर सृष्टि की आयु पर वचार करते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदादिभाष्यभू मका के दूसरे अध्याय अथ वेदोत्प त्त वषय में इस पर वचार कया है क वेद की उत्प त्त कब हुई? इससे यह मानना चाहिए क सृष्टि में मानव की उत्प त्त कब हुई, क्यों क मानव के उत्पन्न होने पर ही तो वेद का ज्ञान उसे प्राप्त हुआ है। इससे पूर्व की स्थिति अर्थात् सृष्टि उत्पन्न होने के प्रारमभ से मानव के उत्पन्न होने के समय पर उन्होंने अपने वचार देना उ चत नहीं समझा। वास्तव में मनुष्य ने तो अपने उत्पन्न होने के बाद ही समय की गणना प्रारमभ की है। सृष्टि के उस समय की गणना वह कैसे करता, जब बन ही रही थी? वह कैसे जानता क सृष्टि उत्पन्न होने की क्रया के प्रारमभ होने से उसके पूर्ण होने तक सृष्टि निर्माण में कतना समय व्यतीत हुआ है? इस पर फर चर्चा करेंगे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी गणना में मनुस्मृति के श्लोकों को ही मुखय रूप से काम में लया है-

अत्वार्याहुः सहस्त्रा ण वर्षाणां तत्कृतं युगम्।

तस्य यावच्छतो सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा वधः।।

-मनु. 1.69

उन दैवीयुग में (जिनमें दिन-रात का वर्णन है) चार हजार दिव्य वर्ष का एक सतयुग कहा है। इस सतयुग की जितने दिव्य वर्ष की अर्थात् 400 वर्ष की सन्ध्या होती है और उतने ही वर्षों की अर्थात् 400 वर्षों का सन्ध्यांश का समय होता है।

इतंरेषु ससन्ध्येषु ससध्यांशेषु च त्रिषु।

एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्त्रा ण शतानि च।।

-मनु. 1.70

और अन्य तीन-त्रेता, द्वापर और क लयुग में सन्ध्या नामक कालों में तथा सन्ध्यांश नामक कालों में क्रमशः एक-एक हजार और एक-एक सौ कम कर ले तो उनका अपना-अपना काल परिणाम आ जाता है।

इस गणना के आधार पर सतयुग 4800 देव वर्ष, त्रेतायुग 3600 देव वर्ष, द्वापर 2400 वर्ष तथा क लयुग 1200 देव वर्ष के होते हैं। इस चारों का योग अर्थात् एक चतुर्युगी 12000 देव वर्ष का होता है।

दै वकानाम युगानां तु सहस्त्रं परि संखयया।

ब्राहममेकमहर्ज्ञेयं तावतीं रात्रिमेव च।। – मनु. 1.72

देव युगों को 1000 से गुण करने पर जो काल परिणाम निकलता है, वह ब्रहम का एक दिन और उतने ही वर्षों की एक रात समझना चाहिए। यह ध्यान रहे क एक देव वर्ष 360 मानव वर्षों के बराबर होता है।

तद्वै युग सहस्रान्तं ब्राहमं पुण्यमह र्वदुः।

रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्र वदोजनाः।।मनु. 1.73

जो लोग उस एक हजार दिव्य युगों के परमात्मा के प वत्र दिन को और उतने की युगों की परमात्मा की रात्रि समझते हैं, वे ही वास्तव में दिन-रात = सृष्टि उत्प त्त और प्रलय काल के वज्ञान के वेत्ता लोग हैं।

इस आधार की सृष्टि की आयु = 12000×1000 देव वर्ष = 12000000 देव वर्ष

12000000×360 = 4320000000 देव वर्ष

12000000 देव वर्ष = 4320000000 मानव वर्ष

यत् प्राग्द्वादशसाहस्त्रमुदितं दै वक युगम्।

तदेक सप्ततिगुणं मन्वन्तर महोच्यते।। -मनु. 1.79

पहले श्लोकों में जो बारह हजार दिव्य वर्षों का एक दैव युग कहा है, इससे 71 (इकहत्तर) गुना समय अर्थात् 12000×71 = 852000 दिव्य वर्षों का अथवा 852000×360= 306720000 वर्षों का एक मन्वन्तर का काल परिणाम गना गया है।

फर अगले श्लोक में कहा गया है क वह महान् परमात्मा असंखय मन्वन्तरों को, सृष्टि उत्प त्त और प्रलय को बार-बार करता रहता है, अर्थात् सृष्टी प्रवाह से अनादि है।

फर स्वामी दयानन्द सरस्वती संकल्प मन्त्र के आधार पर वेद का उत्प त्त काल बताते हैं।

ओ3म् तत्सत् श्री ब्रह्मणः द् वतीये प्रहरोत्तरार्द्धे वैवस्वते मन्वन्तरेऽअष्टा वंशतितमे क लयुगे क लयुग प्रथम चरणेऽमुकसंवत्सरायमनर्तु मास पक्ष दिन नक्षत्र लग्न मुहूर्तेऽवेदं कृतं क्रयते च।

यह जो वर्तमान सृष्टि है, इसमें सातवें वैवस्वत मनु का वर्तमान है। इससे पूर्व छः मन्वन्तर हो चुके हैं और सात मन्वन्तर आगे होवेंगे। ये सब मलकर चौदह मन्वन्तर होते हैं।

इस आधार पर वेदोत्प त्त की काल गणना इस प्रकार होगी-

छः मन्वन्तरों का समय = 4320000×71×6= 1840320000 वर्ष

वर्तमान मन्वन्तर की 27 चतुर्युगी का काल= 4320000×27= 116640000 वर्ष

अट्ठाइसवीं चतुर्युगी के गत तीन युगों का काल= 3888000 वर्ष

क लयुग के प्रारभ से वक्रम सं. 2072 तक का काल= 3043 + 2072 वर्ष

= 5115 वर्ष

कुल योग = 1840320000 +116640000 + 3888000 +5115 वर्ष

= 1960853115 वर्ष। चूं क वक्रम संवत् के प्रारमभ तक क लयुग के 3043 वर्ष व्यतीत हो चुके थे और 3044 वाँ वर्ष चल रहा था, इस लए वर्तमान में 1960853116वाँ वर्ष चल रहा है।

अब कुछ वद्वान् कहते हैं क सृष्टि की आयु जब मनु 1000 चतुर्युगी मानते हैं और दूसरी तरफ इसी आयु को 14 मन्वन्तर अर्थात् 994 चतुर्युगी कहा जाता है, तो दोनों के अन्तर 6 चतुर्युगों का समन्वय कैसे होगा? इसका उत्तर यह है क 994 चतुर्युग तो मानव भोग काल है और 6 चतुर्युगों का समय सृष्टि उत्प त्त के प्रारमभ से लेकर मानव अथवा वेदों की उत्प त्त तक का है। सृष्टि उत्प त्त में जो समय लगा है, वह सृष्टि की आयु में माना जावेगा। इसी

प्रकार भोग काल 994 चतुर्युगों के अन्त में प्रलय काल प्रारमभ होगा और वह प्रलय की आयु में जोड़ा जायेगा।

ऋग्वेद में स्पष्ट कहा गया है क काल लगे बिना कोई कार्य नहीं होता-

त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गो भरद् भ।

क वबुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता स मति र्बभूवः।।

– ऋ. 1.95.8

अर्थ- मनुष्य को चाहिए क (यत्) जो (संपृञ्चानः) अच्छा परिचय करता कराता हुआ (क वः) जिसका क्रम से दर्शन होता है, वह समय (सादने) सदन में (गो भः) सूर्य की करणों वा (अद् भः) प्राण आदि पवनों से (उत्तरम्) उत्पन्न होने वाले (त्वेषम्) मनोहर (बुध्नम्) प्राण और बल सबन्धी वज्ञान और (रूपम्) स्वरूप को (कृणुते) करता है तथा जो (धीः) उत्पन्न बुद् ध वा क्रया (परि) (मर्मृज्यते) सब प्रकार से शुद्ध होती है (सा) वह (देवताता) ईश्वर और वद्वानों के साथ (स मतिः) वशेष ज्ञान की मर्यादा (बभूव) होती है, इस समस्त उक्त व्यवहार को जानकर बुद् ध को उत्पन्न करें।

भावार्थ- मनुष्यों को जानना चाहिये क काल के बिना कार्य स्वरूप उत्पन्न होकर और नष्ट हो जाये- यह होता ही नहीं है और न ब्रहमचर्य आदि उत्तम समय के सेवन के बिना शास्त्र बोध कराने वाली बुद् ध होती है, इस कारण काल के परम सूक्ष्म स्वरूप को जानकर थोड़ा-सा भी समय व्यर्थ न खोवें, कन्तु आलस्य छोड़कर समय के अनुसार व्यवहार और परमार्थ के कामों का सदा अनुष्ठान करें।

यह भी ध्यान रखें क जिस क्रया में जो समय लगे, वह उसी का होगा। स्वामी जी ने इस प्रकरण में वेद का उत्प त्त काल बताया है, सृष्टि की आयु नहीं बताई है। यदि सृष्टि की आयु जानना चाहें तो इसमें सृष्टि का उत्प त्त काल जोड़ दें, तब सृष्टि की आयु होगी-

= 1960853116+25920000= 1986773116 वर्ष

साथ ही सृष्टि की शेष आयु होगी= 4320000000-1986773116= 2333226884 वर्ष सन्धि और सन्ध्यांश काल तो युगों की आयु में पहिले ही जोड़ लए हैं, फर मन्वन्तर के प्रारमभ और अन्त में एक सतयुग का जोड़ना व्यर्थ है। स्वामी जी ने ही नहीं, मनु ने भी इसका उल्लेख नहीं कया है। ज्ञान के अभाव में सृष्टि उत्प त्त काल को न समझ कर 25920000 वर्षों को 15 भागों में व्यर्थ वभाजित कर क्षति पूर्ति करने का प्रयत्न कया गया है। इससे तो यहूदी ही अच्छे हैं, जो सृष्टि की उत्प त्त 6 दिनों में स्वीकार करते हैं। यदि उनके दिन का मान एक चतुर्युगी मान लें तो उनकी सृष्टि उत्प त्त की गणना ठीक वेदों के अनुरूप हो जाती है। इति।

– 73, शास्त्रीनगर**,** दादाबाड़ी**,** कोटा**-324009** (राजस्थान)

सृष्टि वज्ञान, वैदिक साहित्य और स्वामी दयानन्द

MARCH 1, 2016 1 COMMENT

ओ३म्

'सृष्टि वज्ञान, वैदिक साहित्य और स्वामी दयानन्द'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

सृष्टि की उत्प त्त से जुड़े अनेक रहस्य हैं जिन्हें वज्ञान आज भी खोज नहीं पाया अथवा जिसका वज्ञान जगत व हमारे धा र्मक व सामाजिक लोगों का यथो चत ज्ञान नहीं है। मह र्ष दयानंद सत्य-ज्ञान के जिसाज्ञु थे। उन्होंने धर्म-समाज-ज्ञान- वज्ञान कसी भी पक्ष की उपेक्षा न कर सभी वषयों का यथो चत ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से देश का भ्रमण कर उस समय उपलब्ध प्राचीन व प्राचीनतम ग्रन्थों सहित अ धकारी वद्वानों के उपलब्ध ग्रन्थों का भी अध्ययन कर उनमें उपलब्ध ज्ञान को प्राप्त कया। ऐसा कर उनको अनेक नये तथ्यों व रहस्यों का ज्ञान हुआ जिसे वह अपने प्रवचनों में प्रस्तुत करते थे और जब उन्होंने साहित्य सृजन का कार्य कया तो सत्यार्थप्रकाश आदि अनेक ग्रन्थों में उस ज्ञान का प्रसंगानुसार वर्णन कया। उनसे प्राप्त सृष्टि के रहस्य सम्बन्धी ज्ञान के लए तो उनके सभी ग्रन्थों को पढ़ना आवश्यक है परन्तु आज के लेख में हम सत्यार्थप्रकाश से उनके कुछ वचार प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे कुछ प्रमुख बातों का ज्ञान हो सके।

जगत की उत्प त्त में कतना समय व्यतीत हुआ, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मह र्ष दयानन्द कहते हैं क एक अरब, छानवें करोड़, कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्प त्त और वेदों के प्रकाश होने में हुए हैं। इस का स्पष्ट व्याख्यान उन्होंने अपनी पुस्तक ऋग्वेदादिभाष्यभू मका में वस्तार से कया है, वहीं देखना उ चत है। वह आगे बताते हैं क सब से सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात् जो काटा नहीं जा सकता उसका नाम परमाणु है। साठ परमाणुओं के मले हुए का नाम अणु, दो अणु का एक द्वयणुक जो स्थूल वायु है, तीन द्वयणुक का अग्नि, चार द्वयणुक का जल, पांच द्वयणुक की पृ थवी अर्थात् तीन द्वयणुक का त्रसरेणु और उस का दोगुना होने से पृ थवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार क्रम से मला कर भूगोलादि परमात्मा ने बनाये हैं। यहां हम वचार करते हैं क यदि स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में कोई व्यक्ति उनसे परमाणु वषयक इस ववरण पर वस्तृत व्याख्या लखने का अनुग्रह करता तो उत्तम होता जिससे हमें इस वषय के व्याख्या सहित उनके वस्तृत वचार ज्ञात हो सकते थे। उनसे इनका श्रोत व सन्दर्भ भी जाना जा सकता था। अब उनके न रहने पर हमें नहीं लगता की कोई ऐसा वद्वान है जो परमाणु वज्ञान उनके इन कथनों का आधुनिक वज्ञान से संगति लगाकर व समाधान कर सके।

अगला प्रश्न मह र्ष दयानन्द यह लेते हैं क इस सृष्टि का धारण कौन करता है। कोई कहता है शेष अर्थात् सहस्र फण वाले सप्प के शर पर पृ थवी है। दूसरा कहता है क बैल के सींग पर,

तीसरा कहता है क कसी पर नहीं, चैथा हता है क वायु के आधार, पांचवां कहता है क सूर्य के आकर्षण से खंची वा खैंची हुई अपने स्थान पर स्थित, छठा कहता है क पृ थवी भारी होने से नीचे-नीचे आकाश में चली जाती है इत्यादि। इनमें से कस बात को सत्य मानें? इसके उत्तर में वह कहते हैं क जो शेष, सर्प्प और बैल के सींग पर धरी हुई पृ थवी स्थित बतलाता है उस को पूछना चाहिये क सर्प्प और बैल के मां बाप के जन्म समय कस पर थी? तथा सर्प्प और बैल आदि कस पर हैं? बैल वाले मुसलमान तो चुप ही कर जायेंगे। परन्तु सप्र्प वाले कहेंगे क सर्प्प कूर्म पर, कूर्म जल पर, जल अग्नि पर, अग्नि वायु पर तथा वायु आकाश में ठहरा है। उन से पूछना चाहिये क सब कस पर हैं? तो अवश्य कहेंगे परमेश्वर पर। जब उन से कोई पूछेगा क शेष और बैल कस का बच्चा है? शेष कश्यप-कद्रू और बैल गाय का। कश्यप मरीची, मरीची मनु, मनु वराट्, वराट् ब्रह्मा का पुत्र, ब्रह्मा आदि सृष्टि का था। जब शेष का जन्म ही नही हुआ था, उसके पहले पांच पीढ़ी हो चुकी है, तब कस ने धारण की थी? अर्थात् कश्यप के जन्म समय में पृ थवी कस पर थी? तो 'तेरी चुप मेरी भी चुप' और लड़ने लग जायेंगे। इस का सच्चा अ भप्राय यह है क जो 'बाकी' रहता है उस को शेष कहते हैं। कसी क व ने 'शेषाधारा पृ थवीत्युक्तम्' ऐसा कहा क शेष के आधार पृ थवी है। दूसरे ने उसके अ भप्राय को न समझ कर सर्प्प की मथ्याकल्पना कर ली। परन्तु जिस लये परमेश्वर उत्प त्त और प्रलय से बाकी अर्थात् पृथक रहता है इसी से उसको, परमेश्वर को, 'शेष' कहते हैं और उसी के आधार पर पृ थवी है। 'सत्येनोत्त भता भू मः' यह ऋग्वेद का वचन है। इसका अर्थ है क जो त्रैकाल्याबाध्य है अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं होता उस परमेश्वर ने भू म, सूर्य और सब लोक–लोकान्तरों का धारण कया है। 'उक्षा दाधार पृ थवीमुत द्याम्', यह भी ऋग्वेद का वचन है। इसमें ''उक्षा'' शब्द को देखकर कसी ने बैल का ग्रहण कया होगा क्यों क उक्षा बैल का भी नाम है। परन्तु उस मूढ को यह वदित न हुआ क इतने बड़े भूगोल के धारण करने का सामर्थ्य बैल में कहां से आयेगा? वैदिक साहित्य में उक्षा वर्षा द्वारा भूगोल के सेचन करने से सूर्य का नाम है। उस ने अपने आकर्षण से पृ थवी को धारण कया है। परन्तु सूर्यादि का धारण करने वाला बिना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं है। अतः मह र्ष दयानन्द सभी उपलब्ध ववरणों की वैदिक साहित्य से तुलना कर यह निष्कर्ष निकालते हैं क इस सृष्टि को धारण करने वाला ईश्वर वा परमेश्वर ही है, और कोई नहीं। मह र्ष दयानन्द समा ध सद्ध अर्थात् ईश्वर का प्रत्यक्ष वा साक्षात्कार कये हुए अथवा ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति कये हुए मनुष्य वा वद्वान थे। वह वैज्ञानिकों के मत क समस्त सौर्य मण्डल वा ब्रह्माण्ड को आकर्षण-अनुकर्षण, प्रत्येक पण्ड की अपनी-अपनी धुरी व वृत्ताकार गति के कारण स्थित-स्थिर हैं वा गति कर रहे हैं, इनको स्वीकार करने के साथ परमेश्वर का इन सबका उत्प त्तकर्ता व धारणकर्ता स्वीकार करते हैं।

इसी प्रसंग में एक अन्य प्रश्न मह र्ष दयानन्द ने यह कया है क इतने बड़े-बड़े भूगोलों को परमेश्वर कैसे धारण कर सकता होगा? इसका उत्तर वह यह कहकर देते हैं क जैसे अनन्त आकाश के सामने बड़े-बड़े भूगोल अर्थात् समुद्र के आगे जल के छोटे कण के तुल्य भी नहीं हैं, वैसे अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक एक परमाणु के तुल्य भी नहीं कह सकते। वह बाहर भीतर सर्वत्र व्यापक अर्थात् ' वभूः प्रजासु' (यजुर्वेद वचन), वह परमात्मा सब प्रजाओं में व्यापक होकर सब का धारण कर रहा है। जो वह ईसाई, मुसलमान व पुरा णयों के कथनानुसार वभू न होता तो इस सब सृष्टि का धारण कभी नहीं कर सकता था क्यों क

वना प्राप्ति (ईश्वर के सर्वव्यापक अर्थात् सबको सर्वत्र प्राप्त हुए बिना) के कसी को कोई धारण नहीं कर सकता। वह आगे कहते हैं क यदि कोई कहे क ये सब लोक-लोकान्तर परस्पर आकर्षण से धारित होंगे, पुनः परमेश्वर के धारण करने की क्या अपेक्षा है? उन को यह उत्तर देना चाहिये क यह सृष्टि अनन्त है वा सान्त (अन्त वाली वा सी मत)? जो अनन्त कहें तो आकार वाली वस्तु अनन्त कभी नहीं हो सकती और जो सान्त कहें तो उनके पर भाग सीमा अर्थात् जिस के परे कोई भी दूसरा लोक नहीं है, वहां कस के आकर्षण से धारण होगा? जैसे समष्टि कहाता है और एक-एक वृक्षादि को भन्न- भन्न गणना करें तो व्यष्टि कहाता है, वैसे सब भूगोलों को समष्टि गनकर जगत् कहें तो सब जगत् का धारण और आकर्षण का कर्ता वना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं। इस लए जो सब जगत् को रचता है वही 'स दाधार पृ थवीमुत द्याम्।।', यह यजुर्वेद का वचन है, इसमें कहा गया है क जो पृ थव्यादि प्रकाशरहित लोक-लोकान्तर पदार्थ तथा सूर्यादि प्रकाश वाले लोक और पदार्थों का रचन व धारण परमात्मा ही करता है। जो सब में व्यापक हो रहा है वही सब जगत् का कर्ता और धारण करने वाला है।

मह ष दयानन्द सौर मण्डल वषयक कुछ प्रश्नोत्तर प्रस्तुत करते हुए कहते हैं क पृथव्यादि लोग घूमते हैं वा स्थिर हैं? वह उत्तर में कहते हैं क घूमते हैं। (प्रश्न) कतने ही लोग कहते हैं क सूर्य घूमता है और पृ थवी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं क पृ थवी घूमती है सूर्य नहीं घूमता। इसमें सत्य क्या माना जाये? इसका उत्तर मह ष दयानन्द वेदों के आधार पर देते हैं। यह वेद सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए। वेदों का ज्ञान और आधुनिक वज्ञान की खोजे परस्पर एक समान व पूरक हैं। पूर्व प्रश्न के उत्तर में मह ष दयानन्द यजुर्वेद के अध्याय 3 के मन्त्र 63 'आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पतरं च प्रयन्त्स्वः।।' को प्रस्तुत कर उसका अर्थ बताते हुए कहा है क यह भूगोल समुद्र व नदी के जल सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इस लए भू म अर्थात् सम्पूर्ण पृ थवी घूमा करती है। एक अन्य वैज्ञानिक खोज को वेदों में दिखाने हेतु वह यजुर्वेद के 33/43 मन्त्र 'आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्ननमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन स वता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।।' को प्रस्तुत कर कहते हैं क जो स वता अर्थात् सूर्य वर्षादि का कर्ता, प्रकाशस्वरूप, तेजोमय, रमणीयस्वरूप के साथ वर्तमान, सब प्राणी अप्रा णयों में अमृतरूप, वृष्टि वा करण के साथ आकर्षण गुण से सह वर्तमान, अपनी परि ध में घूमता रहता है कन्तु कसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता। इसी प्रकार एक-एक ब्रह्माण्ड में एक सूर्य प्रकाशक और दूसरे सब लोक-लोकान्तर प्रकाश्य हैं। जैसे- दि व सोमो अ ध श्रतः।। यह अथर्ववेद का 14/1/1 मन्त्र है। इसका तात्पर्य बताते हुए दयानन्द जी कहते हैं क यह चन्द्रलोक सूर्य से प्रका शत होता है वैसे ही पृ थव्यादि लोक भी सूर्य के प्रकाश ही से प्रका शत होते हैं। परन्तु रात और दिन सर्वदा वर्तमान रहते हैं क्यों क पृ थव्यादि लोक घूम कर जितना भाग सूर्य के सामने आता है उतने में दिन और जितना पृष्ठ में अर्थात् आड़ में होता जाता है उतने में रात। अर्थात् उदय, अस्त, सन्ध्या, मध्यान्ह, मध्यरात्रि आदि जितने कालावयव हैं वे देश–देशान्तरों में सदा वर्तमान रहते हैं अर्थात् जब आर्यावर्त में सूर्यादय होता है उस समय पाताल अर्थात् 'अमेरिका' में अस्त होता है और जब आर्यावर्त में अस्त होता है तब पाताल देश में उदय होता है। जब आर्यावर्त में मध्य दिन वा मध्य रात है उसी समय पाताल देश में मध्य रात और मध्य दिन रहता है।

मह षे दयानन्द ने सृष्टि रचना व इससे जुड़े वषयों पर जो तथ्य वैदिक साहित्य के आधार पर प्रस्तुत कये हैं वह अति वस्तृत एवं वज्ञानसम्मत हैं। इसके लए उनके समस्त ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये। महाभारत काल के बाद भारत के ब्राह्मण कहे जाने वाले वद्वानों ने वैदिक साहित्य की उपेक्षा कर अज्ञानयुक्त पुराणों आदि की रचना कर मूर्तिपूजा, फ लत ज्योतिष, मृतक श्राद्ध, जन्मना जाति आदि की मथ्या परम्पराओं को प्रच लत कया। उन्होंने सांगोपांग वेदाध्ययन न कर इसका परिणाम सामाजिक व वैज्ञानिक उन्नति का कार्य बन्द कर दिया था जिसके कारण भारत का पतन हुआ। वहीं दूसरी ओर यूरोप के सुधीजनों ने वहां की वज्ञान वरूद्ध व वज्ञान रहित धा र्मक मान्यताओं की उपेक्षा कर वज्ञान की उन्नति पर अपना ध्यान व शक्ति को केन्द्रित कया जिसका परिणाम आज का आधुनिक वज्ञान है। हमारे पौरा णक वद्वान व संसार के अन्य मतवाले आज भी वहीं हैं जहां वह मध्यकाल में थे। मह षे दयानन्द (1825-1883) ऐसे पहले वैदिकधर्मी वद्वान उत्पन्न हुए जिन्होंने वज्ञान को धर्म को आवश्यक अंग स्वीकार कया और वज्ञान की उपेक्षा न कर उसका पोषण कया। महाभारत काल से पूर्व वैदिक धर्म वज्ञान का पूर्ण पोषक व आधार रहा है। इसी कारण महाभारत काल तक भारत में ज्ञान व वज्ञान सर्वोच्च रहा। ज्ञान व वज्ञान से युक्त धा र्मक मान्यतायें एवं इनके परस्पर समन्वय से धर्म, समाज व वज्ञान की उन्नति होकर मानवजाति को लाभ वा सर्वोत्तम सुख प्राप्त होता है। आज भी मध्यकालीन अज्ञानतापूर्ण मान्यतायें चाहे वह कसी भी मत व मतान्तर की हों, उ चत नहीं कही जा सकती। सभी मतों व धर्मों को वज्ञान के आलोक में अपनी मान्यताओं व सद्धान्तों का संशोधन कर अपने-अपने मत व धर्म को मनुष्यों के लए अ धक उपयोगी, स्वीकार्य एवं परिणाम प्राप्ति में सहायक बनाना चाहिये। हम स्वामी दयानन्द के धर्म व वज्ञान के सन्तु लत सद्धान्तों का अध्ययन करने व उसमें निहित धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति की प्रेरणा को आज के युग में सर्वा धक प्रासं गक व सभी मनुष्यों द्वारा ग्रहण कये जाने की आवश्यकता को अनुभव करते हैं क्यों क इसी में मनुष्यजाति का कल्याण है।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

अथर्व – 6.26. -सूक्त- वष्णु देवता के मन्त्रों का वैज्ञानिक ववेचन

FEBRUARY 29, 2016 LEAVE A COMMENT

अथर्व – **6.26.** -सूक्त- वष्णु देवता के मन्त्रों का वैज्ञानिक ववेचन

– आर.बी.एल. गुप्ता एवं डॉ. पुष्पागुप्ता

श्री आर.बी.एल. गुप्ता बैंक में अ धकारी रहे हैं। आपकी धर्मपत्नी डॉ. पुष्पागुप्ता अजमेर के राजकीय महा वद्यालय संस्कृत वभाग की अध्यक्ष रहीं हैं। उन्हीं की प्रेरणा और सहयोग से आपकी वैदिक साहित्य में रु च हुई, आपने पूरा समय और परिश्रम वैदिक साहित्य के अध्ययन में लगा दिया, परिणाम स्वरूप आज वैदिक साहित्य के सबन्ध में आप अ धकार पूर्वक अपने वचार रखते हैं।

आपकी इच्छा रहती है क वैज्ञानिकों और वज्ञान में रु च रखने वालों से इस वषय में वार्तालाप हो। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर इसवर्ष वेद गोष्ठी में एक सत्र वेद और वज्ञान के सबन्ध में रखा है। इस सत्र में वज्ञान में रु च रखने वालों के साथ गुप्तजी अपने वचारों को बाँटेंगे। आशा है परोपकारी के पाठकों के लए यह प्रयास प्रेरणादायी होगा।

-सपादक

इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में वष्णु के वीर्य कर्मों को बताया गया है। वष्णु गुरुत्वाकर्षण शक्ति के अ धष्ठाता देव हैं। वेद के जिन मन्त्रों में अथवा ब्राह्मण ग्रन्थों में जहाँ पर भी वट्, वशः, वष्णु शबद आते हैं- वहाँ पर गुरुत्वाकर्षण शक्ति से सबन्धित व्याखयान हैं- ऐसा निश्चित रूप से समझ लेना चाहिये। वष्णु का प्रथम वीर्य कर्म है-पा र्थव रजों को नापना अर्थात पण्ड की मात्रा के अनुसार गुरुत्वाकर्षण शक्ति का होना। दूसरा वीर्य कर्म है- उत्तर सधस्थ (उत्तम स्थान पर स्थित पण्ड) को त्रेधा वचक्रमण (तीन प्रकार से धारित शक्ति से पण्ड को च क्रत करना) तथा उरुगमन (एक बिन्दु से वस्तृत होते हुए जाना) प्र क्रयाओं से स्कं भत करना।

पा र्थव रज का तात्पर्य है– गुरुत्वाकर्षण (g) ऋ. 1.35.4 में कृष्णा रजां स पद, ऋ. 1.35.9 में कृष्णेन रजसा पद, ऋ. 1.12.5 में अन्तरिक्षे रजसो- वमानः इन मन्त्रों में-कृष्णरज-पा र्थवरज- शबदों में वैज्ञानिक अर्थ है- g (गुरुत्वाकर्षण)। कोई भी भौतिक कण चाहे कतना भी हल्का क्यों न हो, जब तक एक निश्चित आकृति (volume) एवं निश्चित मात्रा (m) का बनकर एक निश्चित कण का रूप ले लेता है, तब उसमें एक निश्चित घनत्व एवं निश्चित गुरुत्वाकर्षण (g) आ जाता हैं। एक निश्चित आकृति के कण को वेदमन्त्रों में मृग कहा गया हैं। ऋ. 1.154.2 (अथर्व 7.26.2) में-मृगःनभीमःकुचरः गरिष्ठा पद में गरि में स्थित कुत्सित गति वाला भयानक मृग- यह अर्थ एक निश्चित मात्रा में आये कण जिसमें गुरुत्वशक्ति आ गई है- के लये कहा गया हैं।

त्रेधा वचक्रमण क्या है ? हमारी पृथ्वी एवं सूर्य का उदाहरण-

पृथ्वी अपनी धुरी (axis) पर एक अहोरात्रि में पूरी घूम जाती है, तथा साथ ही लगभग 25000 क.मी. दूरी सूर्य की परिक्रमा करती हुई आगे बढ़ती है। यहाँ पृथ्वी में दो प्रकार की गति (चक्रमण) है- (1.) अपनी धुरी पर घूमना (2.) सूर्य के परिक्रमा पथ पर घूमते हुये ही आगे बढ़ना।

सूर्य पृथ्वी से कई लाख गुणा आकार में अ धक है, तथा 15 करोड़ कलो मीटर दूरी पर है, फर भी सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति घूमती हुई पृथ्वी को सतत अपनी ओर आक र्षत करती है। सूर्य की इस शक्ति को निःशेष करने के लये पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है तथा परिक्रमा

पथ पर आगे बढ़ती है। इस प्रकार पृथ्वी का जो वचक्रमण हो रहा है, उसका कारण यह तीन प्रकार से पृथ्वी पर धारित शक्तियों के कारण हैं। यदि ऐसा न हो तो पृथ्वी सूर्य में गरकर सूर्य में समा जायेगी। ऐसी स्थिति प्रलय अवस्था में अवश्य आयेगी।

उरुगमन– जंघाओं को फैलाकर जब हम खड़े होते हैं- जब जंघाओं की स्थिति इस प्रकार की होती है, इसे वज्ञान की भाषा में उरुगमन कहते हैं (divertion of rays)। गुरुत्व शक्ति की करणें इसी नियम का पालन करती हैं।

वष्णु का 3 पदों में वचक्रमण क्या है?

ऋ. 1.164.2 में त्रिना भ चक्रं अजरं अनर्वं पद आया है। वेद मन्त्रों में आया त्रिना भ चक्र- अण्डाकार आकृति को बताता है- जिसमें तीन केन्द्रबिन्दु (ना भयाँ) होती हैं। पृथ्वी का सूर्य की परिक्रमा का मार्ग भी अण्डाकार है। इस अण्डाकार मार्ग का मूल सद्धान्त है- केन्द्र में बड़ा पण्ड जैसे सूर्य उसके दोनों तरफ दो और केन्द्र बिन्दु A व B होते हैं। पृथ्वी (E) इस प्रकार घूमती है क पृथ्वी का इन दोनों बिन्दुओं A व B से दूरी का योग हमेशा समान अर्थात् दूरी AE + BE का योग हमेशा समान रहेगा तथा इस प्रकार पृथ्वी का परिभ्रमण मार्ग अण्डाकार बन जाता है।

यही उदाहरण सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करनेवाले अन्य ग्रह-बुध, शुक्र, मंगल, ब्रहस्पति, शनि आदि में भी दिया जा सकता है। यही नहीं, अति सूक्ष्म परमाणु में भी प्रोटोन एवं इलेक्ट्रोन भी इसी त्रिना भ चक्रं-त्रेधा वक्रमण आदि नियमों का पालन करते हैं।

इन्द्रस्य युज्यसखाः – इस सूक्त के मन्त्र संखया 6 में यह पद आया है। इन्द्र दिव्य रजः (emt) का अ धष्ठाता देव है, तथा वष्णु पा र्थव रजः (g) का। परमाणु के अन्दर प्रोटोन का उदाहरण- प्रोटोन के दो भाग हैं- (1.) पा र्थव भाग (matter) तथा (2.) दिव्य भाग (e.m.t)। इसी प्रकार इलेक्ट्रॉन भी है, पर उसमें वद्युत शक्ति – है जब क प्रोटोन में + है। प्रोटोन तथा इलेक्ट्रोन के मध्य भी दो प्रकार की आकर्षण शक्ति (1) वद्युत शक्ति का आकर्षण (इन्द्र की शक्ति) एवं (2) गुरुत्वाकर्षण शक्ति (वष्णु की शक्ति)। अतःमन्त्र 6 में कहा है क वष्णु के कर्मों को देखो जहाँ वह व्रतों को स्पर्श करता है तथा इन्द्र का योजित सखा है। प्रोटोन तथा इलेक्ट्रोन दोनों परामाणु के अन्दर अपने-अपने व्रत्तों में घूमते हैं- एक-दूसरे के व्रत्त (orbit) को स्पर्श करते हुए।

मन्त्र 7 में सूर्यः वष्णु के परम् पद को सदा देखते हैं। यहाँ परम पद से तात्पर्य है गुरुत्व शक्ति का केन्द्र बिन्दु (center of gravity)

मन्त्र 4 में समूढं अस्य पांसुरे।पांसुरे शबद (collective) अर्थ में है। छोटा पण्ड हो या बड़ा, मात्रा अ धक या कम होने से पूरे पण्डकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति कम या अ धक हो जायेगी, परन्तु समूह रूप में पूरे पण्ड की गुरुत्वाकर्षण शक्ति केन्द्र बिन्दु (पांसुरे पद) में गुप्त रूप से निहित हो जाती है।

सृष्टि उत्प त्त क्यों और कैसे ? मानव का प्रादुर्भाव कहाँ? – आचार्य पं. उदयवीर जी शास्त्री

FEBRUARY 23, 2016 2 COMMENTS

सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्राणी मानव है। मानव को अपनी इस स्थिति के वषय में कदा चत् अ भमान हो सकता है, पर अ धका धक उन्नति कर लेने परी यह सृष्टि रचना में सर्वथा असमर्थ रहता है। इसका कारण है, मानव जब अपने रूप में प्रकट होता है, उससे बहुत पूर्व सृष्टि की रचना हो चुकी होती है, इस लये यह प्रश्न ही नहीं उठता क मानव सृष्टि रचना कर सकता है। तब यह समस्या सामने आती है क इस दुनिया को कसने बनाया होगा?

भारतीय प्राचीन ऋ षयों ने इस समस्या का समाधान कया है। जगत को बनाने वाली शक्ति का नाम 'परमात्मा' है, इसको ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। यह ठीक है क परमात्मा इस पृ थवी, चाँद, सूरज आदि समस्त लोक-लोकान्तर रूप जगत् को बनाने वाला है, परन्तु जिस मूलतत्त्व से इस जगत् को बनाया जाता है, वह अलग है। उसका नाम प्रकृति है। प्रकृति त्रिगुणात्मक कही जाती है। वे तीन गुण हैं- सत्व, रजस् और तमस्। इन तीन प्रकार के मूल तत्त्वों के लये 'गुण' पद का प्रयोग इसी लये कया जाता है क ये तत्त्व आपस में गु णत होकर, एक-दूसरे में मथुनीभूत होकर, परस्पर गुँथकर ही जगद्रूप में परिणत होते हैं। जगत् की रचना पुण्यापुण्य, धर्माधर्म रूप शुभ-अशुभ कार्मों के करने और उनके फलों को भोगने के लये की जाती है। इन कर्मों को करने और भोगने वाला एक और चेतन तत्त्व है, जिसको जीवात्मा कहा जाता है। ये तीनों पदार्थ अनादि हैं-ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति।

जगत उत्पन्न होता है या नहीं?

प्रश्न-यह जगत् कभी उत्पन्न नहीं होता, अनादि काल से ऐसा ही चला आता है और अनन्त काल तक ऐसा ही चला जायगा, ऐसा मान लेने पर इसके बनने-बनाने का प्रश्न ही नहीं उठता, तब इसको बनाने के लए ईश्वर की कल्पना करना व्यर्थ है। यह चाहे प्रकृति का रूप हो या कोई रूप हो, अनादि होने से ईश्वर की कल्पना अनावश्यक है।

उत्तर-जगत् को जिस रूप में देखा जाता है, उससे इसका वकारी होना स्पष्ट होता है। यदि जगत् अनादि-अनन्त एक रूप हो, तो यह नित्य माना जाना चाहिये, नित्य पदार्थ अपने रूप में कभी परिणामी या वकारी नहीं होता, परन्तु जागतिक पदार्थों में प्रतिदिन परिणाम होते देखे जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है क पृ थव्यादि लोक-लोकान्तरों की दृश्यमान स्थिति अपरिणा मनी अथवा अ वकारिणी नहीं है। इसमें परिणाम का निश्चय होने पर यह मानना पड़ेगा क यह बना हुआ पदार्थ है, तब इसके बनाने वाले को भी मानना होगा।

प्रश्न-पृ थव्यादि को वकारी मानने पर भी बनाने वाले की आवश्यकता न होगी। जिन मूलतत्त्वों से इनका परिणाम होना है, वे स्वतः इस रूप में परिणत होते रहते हैं। संसार में अनेक पदार्थ स्वतः होते देखे जाते हैं। अनेक स्वचा लत यन्त्रों का आज निर्माण हो चुका है।

उत्तर-पृ थव्यादि समस्त जगत् जड़ पदार्थ है, चेतना-हीन। इसका मूल उपादान तत्त्व भी जड़ है। कसीाी जड़ पदार्थ में चेतन की प्रेरणा के बिना कोई क्रया होना संभव नहीं। चेतना के सहयोग के बिना कसी जड़ पदार्थ में स्वतः प्रवृ त होती नहीं देखी जाती। इसके लये न कोई युक्ति है, न दृष्टान्त। स्वचा लत यन्त्रों के वषय में जो कहा गया, उन यन्त्रों का निर्माण तो प्रत्यक्ष देखा जाता है। उनको बनाने वाला शल्पी उसमें ऐसी व्यवस्था रखता है, जिसे स्वचा लत कहा जाता है। यन्त्र अपने-आप नहीं बन गया है, उसको बनाने वाला एक चेतन शल्पी है और उस यन्त्र की निगरानी व साज-सँवार बराबर करनी पड़ती है, यह सब चेतन-सहयोग-सापेक्ष है, इस लये यह समझना क पृ थव्यादि जगत् अपने मूल उपादान तत्त्वों से चेतन निरपेक्ष रहता हुआ स्वतः परिणत हो जाता है, वचार सही नहीं है। फलतः जगत् के बनाने वाले ईश्वर को मानना होगा।

प्रकृति की आवश्यकता?

प्रश्न – आपने यह स्पष्ट कया क ईश्वर को मानना आवश्यक है। यदि ऐसा है, तो केवल ईश्वर को मानने से कार्य चल सकेगा। ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् माना जाता है, वह अपनी शक्ति से जगत् को बना देगा, उसके अन्य कारण प्रकृ ति की क्या आवश्यकता है? कतिपय आचायरें ने इस वचार को मान्यता दी है।

उत्तर- ईश्वर जगत् को बनाने वाला अवश्य है, पर वह स्वयं जगत् के रू प में परिणत नहीं होता। ईश्वर चेतन तत्त्व है, जगत् जड़ पदार्थ है। चेतना का परिणाम जड़ अथवा जड़ का परिणाम चेतन होना संभव नहीं। चेतन स्वरूप से सर्वथा अपरिणामी तत्त्व है। यदि चेतन ईश्वर को ही जड़ जगत् के रूप में परिणत हुआ माना जाय तो यह उस अनात्मवादी की कोटि में आजाता है, जो चेतन की उत्प त्त जड़ से मानता है। कारण यह है क यदि चेतन जड़ बन सकता है, तो जड़ को भी चेतन बनने से कौन रोक सकता है? इस लये चेतन से जड़ की उत्प त्त अथवा जड़ से चेतन की उत्प त्त मानने वाले दोनों वादी एक ही स्तर पर आ खड़े होते हैं। फलतः यह सद्धान्त बुद् धगय है क न चेतन जड़ बनता है और न जड़ चेतन बनता है। चेतन सदा चेतन है, जड़ सदा जड़ है। इससे यह स्पष्ट होता है क जड़ जगत् जिस मूल तत्त्व का परिणाम है, वह जड़ होना चाहिये, इस लये चेतन ईश्वर से अतिरिक्त मूल उपादान तत्त्व मानना होगा, उसी का नाम प्रकृति है।

जब यह कहा जाता है क सर्वशक्तिमान् ईश्वर अपनी शक्ति से जगत् को उत्पन्न कर देगा, उस समय प्रकृति को ही उसकी शक्ति के रूप में कथन कर दिया जाता है। वैसे सर्वशक्तिमान् पद के अर्थ में यही भाव अन्तर्निहित है क जगत् की रचना करने में ईश्वर को अन्य कसी कर्त्ता के सहयोग की अपेक्षा नहीं रहती। वह इस कार्य के लये पूर्ण शक्त है, अप्रतिम समर्थ है। फलतः यह जगत् परिणाम प्रकृ ति का ही होता है, ईश्वर केवल इसका नि मत्त, प्रेरयिता,नियन्ता व अ धष्ठाता है। यही सत्य स्वरूप प्रकृति सब जगत् का मूल घर और स्थिति का स्थान है।

इस प्रसंग में सत्यार्थप्रकाश [स्थूलाक्षर, वेदानन्द संस्करण, पृ. 191, पंक्ति 10-12] के अन्दर एक वाक्य है, जिसे अस्पष्टार्थ कहा जाता है। वह वाक्य है – 'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा, ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था, अभाव न था- इस वाक्य के अ भमत अर्थ को स्पष्ट करने व समझने के लये इसमें से दो अवान्तर वाक्यांशों

का वभाजन करना होगा। इस वाक्य में से 'और जीवात्मा ब्रह्म' इन पदों को अलग करके रख लीजिये फर शेष वाक्य को पढ़िये, वह इस प्रकार होगा- 'यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और प्रकृति में लीन होकर वर्त्तमान था, आाव न था।' इतना वाक्य एक पूरे अर्थ को व्यक्त करता है। जगत् जो अब हमारे सामने वद्यमान है, यह सृष्टि के पूर्व अर्थात् प्रलय अवस्था में असत् के सदृश था, सर्वथा असत् या तुच्छ न था, कारण यह है क यह प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था, तात्पर्य यह क कारण-रूप से वद्यमान था, इससे प्रतीत होता है क ऋ ष ने कार्य-कारणभाव में सत्कार्य सद्धान्त को स्वीकार कया है। प्रलय अवस्था में जगद्रूप कार्य कारण रूप से वद्यमान रहता है, उसका सर्वथा अभाव नहीं हो जाता।

जो पद हमने उक्त वाक्य में से अलग करके रक्खे हैं, वे दो अवान्तर वाक्यों को बनाते हैं -1- 'और जीवात्मा वर्त्तमान था'। 2- 'ब्रह्म वर्त्तमान था' तात्पर्य यह क प्रलय अवस्था में प्रकृति के साथ जीवात्मा और ब्रह्म भी वर्तमान थे। इस प्रकार उक्त पंक्ति से ऋ ष ने उस अवस्था में तीन अनादि पदार्थों की सत्ता को स्पष्ट कया है तथा इस मन्तव्य का एक प्रकार से प्रत्यायान कया है, जो उस अवस्था में एक मात्र ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करते हैं, जीव तथा प्रकृति की स्थिति को नहीं मानते, इनका उद्भव ब्रह्म से ही मान लेते हैं।

तीन अनादि पदार्थों के मानने पर जगद्रचना की व्याया सर्वा धक निर्दोष की जा सकती है। कारण यह है क लोक में कसी रचना के हेतु तीन प्रकार के देखे जाते हैं। प्रत्येक कार्य का कोई बनाने वाला होता है, कुछ पदार्थ होते हैं, जिनसे वह कार्य बनाया जाता है, कुछ सहयोगी साधन होते हैं। पहला कारण नि मत्त कहलाता है, दूसरा उपादान और तीसरा साधारण। संसार में कोई ऐसा कार्य संभव नहीं, जिसके ये तीन कारण नहीं है। जब दृश्यादृश्य जगत् को कार्य माना जाता है तो उसके तीनों कारणों का होना आवश्यक है। इसमें जगत् की रचना का नि मत्त कारण ईश्वर, उपादान कारण प्रकृति तथा जीवों के कृत शुभाशुभ कर्म अथवा धर्माधर्म आदि साधारण कारण होते हैं, इस लये इन तीनों पदार्थों को अनादि माने बिना सृष्टि की निर्दोष व्याया नहीं की जा सकती।

ब्रह्म से ही जगत्-उत्प त्त नहीं?

प्रश्न-वेदान्त दर्शन पर वचार करने वाले तथाक थत नवीन आचार्यों की यह मान्यता है क एक मात्र ब्रह्म को वास्त वक तत्त्व मानने पर सृष्टि की व्याया की जा सकती है। उनका कहना है क जगत् के नि मत्त और उपादान कारण को अलग मानना आनावश्यक है। एक मात्र ब्रह्म स्वयं अपने से जगत् को उत्पन्न कर देता है, उसे अन्य उपादान की अपेक्षा नहीं। लोक में ऐसे दृष्टान्त देखे जाते हैं। मकड़ी अपने आप से ही जाला बुन देती है, बाहर से उसे कोई साधन-सहयोग लेने की अपेक्षा नहीं होती, ऐसे ही जी वत पुरुष से केश-नख स्वतः उत्पन्न होते रहते हैं। इसी प्रकार ब्रह्म अपने से ही जगत् को उत्पन्न कर देता है।

उत्तर – यह बात पहले कही जा चुकी है क यदि ब्रह्म अपने से जगत् को बनावे तो वह वकारी या परिणामी होना चाहिये। ब्रह्म चेतन तत्त्व है, चेतन कभी वकारी नहीं होता। इसके अतिरिक्त यह बात भी है क चेतन ब्रह्म का परिणाम जगत् जड़ कैसे हो जाता? क्यों क कारण के वशेष गुण कार्य में अवश्य आते हैं। या तो जगत् भी चेतन होता, या फर कार्य जड़-जगत् के अनुसार उपादान कारण ईश्वर या ब्रह्म को भी जड़ मानना पड़ता, पर न जगत्

चेतन है, और न ईश्वर जड़, इस लये ईश्वर को जगत् का उपादान कारण नहीं माना जा सकता।

ब्रह्म उपादान से जगत् की उत्प त्त में मकड़ी आदि के जो दृष्टान्त दिये जाते हैं, उनकी वास्त वकता की ओर कसी ब्रह्मोपादानवादी ने क्यों ध्यान नहीं दिया, यह आश्चर्य की बात है। ये दृष्टान्त उक्त मत के साधक न होकर केवल बाधक हैं। मकड़ी एक प्राणी है, जिसका शरीर भौतिक या प्राकृतिक है और उसमें एक चेतन जीवात्मा का निवास है। उस प्राणी द्वारा जो जाला बनाया जाता है, वह उस भौतिक शरीर का वकार या परिणाम है, चेतन जीवात्मा का नहीं। यही ध्यान देने की बात है क शरीर से जाला उसी अवस्था में बन सकता है, जब शरीर का अ धष्ठाता चेतन जीवात्मा वहाँ वद्यमान रहता है। वह स्थिति इस बात को स्पष्ट करती है क केवल जड़ तत्त्व चेतन के सहयोग के बिना स्वतः वकृत या परिणत नहीं होता। दृष्टान्त से स्पष्ट है क जाला रूप जड़ वकार जड़ शरीर का है, चेतन जीवात्मा का नहीं। इस दृष्टान्त का उद्भावन करने वाले उपनिषद् (यथोर्णना भः सृजते गृह्णते च) वाक्य में यही स्पष्ट कया है क जैसे मकड़ी जाला बनाती और उसका संहार करती है, उसी प्रकार अ वनाशी ब्रह्म से यह वश्व प्रादुर्भूत होता है।

उपनिषद् के उस वाक्य में 'यथा' और 'तथा' शद ध्यान देने योग्य हैं। जैसे मकड़ी जाला बनाती और उपसंहार करती है- **'**तथाऽक्षरात्संभवतीह वश्वम्**',** वैसे अ वनाशी ब्रह्म से यहाँ वश्व प्रादुर्भूत होता है। अब देखना यह है क जाला मकड़ी के भौतिक शरीर से परिणत होता है और बनाने वाला अ धष्ठाता चेतन आत्मा वहाँ इस प्रवृति का प्रेरक है, चेतन स्वयं जाला नहीं बनता, ऐसे ही ब्रह्म अपने प्रकृति रूप देह से वश्व का प्रादुर्भव करता है। समस्त वश्व परिणाम प्रकृति का ही है, प्रकृति से होने वाली समस्त प्रवृ त्तयों का प्रेरक व अ धष्ठाता परमात्मा रहता है। वह स्वयं वश्व के रूप में परिणत नहीं होता, इस लए वह वश्व का केवल नि मत्त कारण है, उपादान कारण नहीं हो सकता।

जगत् का निर्माण क्यों**?**

प्रश्न- यह ठीक है क सृष्टिकर्त्ता ईश्वर है और वह प्रकृति मूल उपादान से जगत् की रचना करता है, परन्तु प्रश्न है, जगत् की रचना में उसका क्या प्रयोजन है? जगत् की रचना कस लक्ष्य को लेकर की जाती है? यदि इसका कोई प्रयोजन ही नहीं, तो रचना व्यर्थ है, उसने क्यों ऐसा कया? वह तो सर्वज्ञ है, फर ऐसी निष्प्रयोजन रचना क्यों?

शेष भाग अगले अंक में**…..**

Creation of life: Aachary Udayveer ji

संस्कृत की शब्द -सपदा – आचार्य आनन्दप्रकाश

JANUARY 30, 2016 LEAVE A COMMENT

संस्कृत भाषा महत्त्वपूर्ण है, यह हम कहते हैं, परन्तु क्यों इसको बहुत कम लोग जानते हैं? जब आप इस लेख को पढ़ लेंगे, तब इसका साक्षात्कार हो जायेगा। वद्वान् लेखक वर्तमान में

आर्ष-शोध-संस्थान अ लयाबाद, शामीरपेट, जि. रंगारेड्डी (तेलंगाना) में अध्ययन-अध्यापन में संलग्न हैं। –सपादक

संसार की सभी भाषाओं की जननी तथा संस्कृति और सयता की संवाहिका देववाणी संस्कृत-भाषा के अदुत और वलक्षण गुणों पर आज सारा संसार मुग्ध है। यहाँ उसकी केवल एक ही वशेषता का सं क्षप्त दिग्दर्शन कराया जा रहा है। वह वशेषता है, उसके पदों की सुमहती सपदा और उनकी यौ गकता।

संस्कृत–पदों को दृष्टव्य व अव्यय इन दो भागों में वभक्त कया जा सकता है। दृष्टव्य / वकारी शदों के पुनः दो भेद हैं- नाम और आयात। नाम पद सुबन्त होते हैं तथा आयात/क्र यापद तिङन्त।

अव्यय–उपसर्ग, निपात, कुछ कृत्प्रत्ययान्त, कतिपय तद् धतप्रत्ययान्त तथा कतिपय समस्त पद अव्यय होते हैं। इन सभी का मूल है धातु।

धातु से तिङ्प्रत्यय के योग से क्रयापद तथा कृत्प्रत्यय के योग से नाम या प्रातिपदिक बनते हैं, जिन्हें सामान्य भाषा में शब्द कहते हैं। प्रातिपादिक से सुप् प्रत्ययों के योग से पद बनते हैं। इसी प्रकार तिङ्प्रत्ययान्त धातुज शदों को भी पद कहते हैं।

अथाह शब्द भण्डार

एक-एक धातु से लाखों शब्द बनते हैं। यह संस्कृत की अनुपम वशेषता है। उदाहरण के लए भू धातु को ही लेते हैं, जो धातुपाठ का प्रथम धातु है। ‘भू’ का सामान्य अर्थ है-होना।

संस्कृत में दस लकार हैं- लट्, लट्, लुट् लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लङ, लुङ् , लृङ्। इनमें पञ्चम लकार ‘लेट्’ वेद में ही प्रयुक्त होता है। व्यवहार में प्रायः अप्रयुक्त है। लङ् लकार के दो ोद हैं। एक- वध्यादि लङ्, जिसे सामान्यतया व ध लङ् बोलते हैं, दूसरा है- आशी र्लङ्। इस प्रकार सामान्य व्यवहार में भी दस लकार आ जाते हैं।

प्रत्येक लकार में तीन पुरुष – प्रथम, मध्यम तथा उत्तम, और प्रत्येक पुरुष में तीन वचन होते हैं- एकवचन, द् ववचन तथा बहुवचन। फलतः एक लकार के न्यूनतम 9 पद रूप हो जाते हैं। कहीं-कहीं रूप-भेद से यह संया बढ़ भी जाती है।

इस प्रकार लट् लकार में भवति, भवतः, भवन्ति, भव स,ावथः, भवथ, भवा म, भवावः, भवामः, – इत्यादि, शेष 9 लकारों में भी 9-9 रूप बनकर -9×10=90 पद होते हैं ।

यह संया कर्तृवाच्य परस्मैपद की है। यदि धातु आत्मनेपदी भी हो तो- व्यतिभवते, व्यतिभवेते, व्यतिभवन्ते इत्यादि 90 रूप और होंगे। इसी प्रकार कर्मवाच्य में भी 90 रूप होंगे।

‘चाहना’ अर्थ में धातु से ‘सन्’ प्रत्यय लगता है। होना चाहता है- बुाूषति। देश - वदेश की कसी भी भाषा में यह वशेषता नहीं है। ङ्खड्डठ्ठह्लह्य ह्लश द्दश, ङ्खड्डठ्ठह्लह्य ह्लश स्रश, ङ्खड्डठ्ठह्लह्य ह्लश ड्ढद्ग या जाना चाहता है, करना चाहता है, होना चाहता है- इत्यादि वाक्य बनते हैं। भन्न रूप में प्रयोग सभव ही नहीं, परन्तु संस्कृत में दोनों तरह के

प्रयोग सभव हैं- 'गन्तुम् इच्छति' भी 'जिग मषति' भी। इसी प्रकार 'कर्तुम् इच्छति' – परस्मै. और आत्मनेपदों के 10 लकारों के ये 180 रूप बनते हैं। इसके भी कर्मवाच्य आदि में 'बुभूष्यते'- इत्यादि 90-90 रूप बनते हैं।

बार-बार होना या 'बहुत होना' अर्थ में धातु से यङ् प्रत्यय होता है (धातोरेकाचो.)। यह उन एकाच धातुओं से होता है, जिनका आदि वर्ण हल/व्यञ्जन हो। यथा – भ् + ऊ = भू, प + अठ्=पठ्। इससे भी 'बोभूयते' इत्यादि 90 रूप बनते हैं।

इस यङ् का लुक् (=लोप) हो जाने पर 'बोभवीति' तथा 'बोभोति' जैसे एक वचन के दो रूपों के कारण 30+90=120 रूप बनते हैं। फर इनकी कर्मवाच्य, भाववाच्य, कर्मकर्तृवाच्य आदि प्र क्रयाओं के भी दसों लकारों में रूप चलते हैं।

प्रेरणा अर्थ में धातु से णच् – प्रत्यय होता है। ऐसे धातु को णजन्त कहते हैं । इससे प्रेरणार्थक या णजन्तरूप भावयति, भावयतः, भावयन्ति आदि परस्मैपद में तथा भावयते, भावयेते, भावयन्ते आदि आत्मनेपद में होते हैं। इस प्रकार 10 लकारों के ये रूप 90+90=180 हो जाते हैं।

सन्, यङ्, णच् की प्र क्रयाओं में दो या तीनों प्र क्रयाओं के मल जाने पर पुनः 90-90 रूप बनते जाते हैं। जैसे – पुनः पुनः भ वतु मच्छति = 'बोभूयिषते' इत्यादि। भावयितु मच्छति= ' वभावयिषति' इत्यादि। पुनः पुनः भावयितु मच्छति= 'बोभूययिषति'।

वेद में व्यत्यय की बहुलता से प्रयुक्त लेट् लकार में और भी अ धक रूप होते हैं। यथा- भू धातु के लेट् लकार के केवल तिप् में- ''भ वषति, भा वषाति, भा वषद्, भा वषाद्, भा वषत्, भा वषात्, भ वषति, भ वषाति, भ वषद् भ वषाद् भ वषत् भ वषात् भवति, भवाति, भवद्, भवाद्, भवत्, भवात्''-ये 18 रूप केवल भवेत् के तुल्य अर्थात् लङ् के अर्थ में प्रथम पुरुष एकवचन के हैं। द् ववचन में 6 रूप, बहुवचन में 12, द् ववचन में 6, बहुवचन में 6 रूप और उत्तम पुरुष के एक वचन में 12 तथा द् ववचन और बहुवचन में भी 12-12 रूप बनते हैं। इस एक ही लकार में 16 रूप हैं।

अन्य लकारों के समान 'लेट्' में भी आत्मनेपद, भाववाच्य, कर्मवाच्य, कर्मकर्तृप्र क्रयाः सन्, यङ्, णच् आदि प्र क्रयाओं में समान रूप से पद बन सकते हैं।

'भू' – धातु से इस प्रकार लेट् लकार सहित सभी 11 लकरों में हमारे हस्तलेख अमुद्रित 'धातुप्रकाशः' के अनुसार कुल तिङन्तरूप 6336 बनते हैं।

क्रया पद के निष्पन्न रूप के साथ 'तरप्, तमप्, कल्पप्, देश्य, देशीयर, अकच्, रूपप्' – आदि कुछ तद् धत प्रत्यय व शष्ट अर्थों में लगते हैं। तदनुसार 'भवतितराम्, भवतितमाम्, भवतिकल्पम्, भवतिदेश्यम्, भवतिदेशीयम्,भवत क, भवतिरूपम्'= भवति रूप बनते हैं, जो 6336×7= 44352 रूप बनते हैं, जो पूर्वरूपों के साथ मलकर (44352+6336)= 50688 रूप हो जाते हैं।

उपसर्गों की वशेषता

उपसर्गों के योग से धात्वर्थ में कहीं वैशिष्ट्य आ जाता है, तो कहीं अर्थ बदलता है। जैसेः- 'प्रभवः, पराभवः सावः, अनुभव, वभवः, आभव, अ धभवः, उदव, अ भभवः, प्रतिभवः, परिभवः' इत्यादि । इसी प्रकार आहारः, वहारः, संहारः, प्रहार, समाहारः, प्रत्याहारः, उदाहारः इत्यादि रूप होते हैं।

20 उपसर्गों के योग से पूर्वोक्तरूप (50688×20)= 1013760 बनते हैं, जो उपसर्गरहितों से मलकर (1013760+50688)= 1064448 रूप हो जाते हैं। ये दस लाख चौंसठ हजार चार सौ अड़तालीस रूप केवल 'भू' धातु के हैं। पा णनीय धातुपाठ में इस प्रकार के धातु 2000 से अ धक हैं।

इनमें कुछ धातु अजादि (स्वरादि) हैं, जिनसे यङ् प्रत्यय न होने से यङन्त प्र क्रया के रूप कम हो जाते हैं। इस प्रकार यदि औसतन प्रत्येक धातु से 10 लाख रूप मानें तो सब धातुओं के रूप मलकर (1000000×2000)= 2,00,00,00,000 (दो अरब= दौ सौ करोड़) रूप हो जाते हैं।

उपर्युक्त संया पा णनीय धातुपाठ की लगभग 2000 धातुओं से निष्पन्न रूपों की है। काशकृत्स्न-धातुपाठ के लगभग 800 (= आठ सौ) धातु ऐसे हैं, जो पा णनीय धातुपाठ में नहीं हैं। कुछ सौत्र धातु अष्टाध्यायी में तथा कुछ जिनेन्द्र-व्याकरण आदि के धातुओं की संया दो सौ/200हो जाती है। इस प्रकार पा णनीय धातुपाठ से अतिरिक्त 1000(= एक सहस्र) धातु हैं, जिनके पूर्वोक्त व ध से 1,00,00,00,000 (= एक अरब = एक सौ करोड़) रूप और बनेंगे तथा कुल मलाकर 3,00,00,00,000 (= तीन अरब) धातुरूप होंगे।

कृत् – प्रत्यय

'भू' – धातु से कृत्प्रत्ययों के योग से बने प्रातिपदिकों / शदों को भी संक्षेप से देखेंः-

'चाहिए' या 'के लए' अर्थ में 'तव्य' प्रत्यय लगता है। 'भू + तव्य = भ वतव्य', (होना चाहिए, होने योग्य)। इसके तीनों लङ्गों में सातों वाक्तियों में 21+21+21 = 63 रूप होते हैं।

सन् आदि प्रत्ययान्त भू-धातु से 'तव्य' प्रत्यय का योग होने पर 'बुभू षतव्य, भावयितव्य, भावयि षतव्य, बोभूयितव्य'- आदि रूप बनेंगे।

प्रत्येक के तीनों लङ्गों और सातों वभक्तियों में 63-63 रूप बनकर 63×4= 252 रूप तथा पूर्व के 63 रूप मलकर 252+63= 315 रूप होंगे।

तव्य से अतिरिक्त अन्य 40 से अ धक कृत् प्रत्ययाी 'भू' धातु से लगते हैं, जिनसे पूर्ववत् (315×40=)12600 रूप बनते हैं। इनके समान पूर्वोक्त (2000+1000 =)3000 धातुओं से (12,500×3000=)3,75,00,000 रूप न्यूनतम बनेंगे। इन सबके साथ 20 उपसर्ग लगें तो (3,75,00,000×20=) 75,00,00,000 रूप और भी बन जायेंगे। पूर्वोक्त निरुपसर्गों के साथ मलकर कुल कृदन्त रूप (75,00,00,000+ 3,75,00,000=) 78,75,00,000 (अठत्तर करोड़ पचत्तर लाख) बनते हैं।

कृदन्त प्रातिपदिकों से तद् धत प्रत्ययों के योग से अर्थ वशेष में भन्न प्रातिपदिक बना लए जाते हैं। जैसे-ू म से सबन्धित अर्थ में 'भौम'। यह वशेषण होने से तीनों लङ्गों में हो

सकता है। इसी प्रकार 'प्रति भू' से 'प्रातिभाव्य' (जमानत) 'स्वयभू' से 'स्वायभुव', 'भूरि' से 'भौरिक', 'भवत्' 'भवदीय, भावत्क'। 'भूत' से 'भौतिक'। वभव से 'वैभव'। शभू से 'शाभव'। ये सभी वशेषण होने के कारण तीनों लङ्गों से सबद्ध हैं। भू धातु के योग से यथेष्ट शब्द बन जाते हैं।

कुछ तद् धत प्रत्यय शदों को अव्यय भी बना देते हैं। जैसे- भव + त सल् = भवतः (भव से); भव + त्रल् = भवत्र इत्यादि।

पारस्परिक समास से बने शदों की इयत्ता असाव है। अव्ययीभाव के पद एवं कुछ अन्य सामा सक पद अव्यय होते हैं।

जैसे :- अ धभूतम् (भूत या भूतों में)। अ धभवम् (जन्म में, संसार में, शव में) इत्यादि।

यहाँ भू धातु से निष्पन्न अत्यन्त प्र सद्ध पदों की गणना कराई गयी है। अन्य अप्र सद्ध प्रत्यय या अतिशास्त्रीय प्रयोग छोड़ दिए हैं। इसी प्रकार अन्य धातुओं से भी बहुत से रूप बनते हैं। उनकी पूर्ण इयत्ता नहीं बतायी जा सकती।

नामधातु

अब तक हमने पा णनीय धातुपाठ के धातुओं तथा अन्य धातुपाठों के लगभग 3000 धातुओं से निष्पन्न वा िन्न रूपों के वस्तार का दिग्दर्शन कराया है। अब नाम धातुओं का वचार करते है।

नामधातु के रूप में प्रत्येक प्रातिपदिक एक धातु है तथा उससे फर उसी प्रकार लाखों पदों का क्रम है-पुत्र से 'पुत्रीयति, पुत्रायते'। 'अश्व' से 'अश्वस्यति' अश्वायते। 'त्वद्' से 'त्वद्यति' इत्यादि 10 लकारों एव 40 प्र क्रयाओं में रूप करोड़ों , अरबों की संया में हो जाते हैं। तुल्य-आचरण अर्थ में क्विप् प्रत्यय होने पर जिसका क पूर्णतया लोप भी हो जाता है, प्रत्येक प्रातिपदिक उसी रूप में नामधातु बन जाता है। जैसे :- देवदत्त इव आचरति (देवदत्त + क्विप्) देवदत्त, (देवदत्त + शप् +तिप्)= 'देवदत्तति'; 'देवदत्ततः'; 'देवदत्तन्ति'- इत्यादि सभी पुरुषों सभी वचनों, सभी दस लकारों, सभी 40 प्र क्रयाओं में तिङन्त एवं कृदन्त रूप अरबों, खरबों की संया में व शष्ट अथरें में बनते चले जाते हैं।

नामधातुओं से बने शदों /पदों की गणना करना उसी प्रकार असाव है, जिस प्रकार अन्तरिक्ष के सभी तारों अथवा पृ थवी आदि ग्रहों पर स्थित सभी पदार्थों के परमाणुओं की गनती / इयत्ता बताना। चन्तन करते – करते पा णनीय आदि व्याकरणों के आधार पर ब्रह्माण्ड में शब्द समूह /शब्द ब्रह्म वैसा ही व्यापक दीखता है, जैसे लोक-लोकान्तरों में सब ब्रह्माण्डों में ब्रह्म /परमेश्वर व्यापक है। शदों /पदों की एक-एक करके गणना करने के लए यदि सब समुद्रों की स्याही बनाकर, सब वृक्षों की एक-एक टहनी को लेखनी बनाकर युगों-युगों तक लखा जाय, तो भी उनकी गणना पूरी नहीं हो सकेगी।

जिस प्रकार व शष्ट दूरबीनों की सहायता से वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड के सतारे गनने का कुछ प्रयत्न करते हैं, उसी प्रकार वैयाकरण लोग पा णनीय आदि व्याकरणों की सहायता से आवश्यक/अपे क्षत शदों की अर्थ सहित व्यवस्थित जानकारी करते कराते हैं।

शब्द कोष

संस्कृत का शब्द कोष भी संसार की सभी भाषाओं से वशालतम है। इसमें पृ थवी के लए 25 शब्द हैं, रात्रि के लए 27, उषा के लए 20, मेघ के लए 35, वाणी के लए 120, नदी के लए 37, अपत्य/पुत्र के लए 25, मनुष्य के लए 30 शब्द हैं। ये केवल उदाहरण मात्र हैं, परिगणन नहीं।

संसार की कसीाी भाषा में इतना वशाल शब्द संग्रह नहीं है। हरीतकी (=हरड़) के 35 नाम है। उनमें से कुछ ये हैंः- अभया, अव्यथा, पथ्या, श्रेयसी, शवा, कायस्था, बल्या, पाचनी, जीवनिका, जीवनी, प्राणदा, अमृता- इत्यादि। इससे जान सकते हैं क हरड़ से शरीर निरोग होता है, रोगभय दूर होता है, पाचनशक्ति बढ़ती है। स्त्री के – माता, जननी, महिला, योषा, पुरन्ध्री, पतिंवरा, वर्या, कुलवधू, कुलपा लका, जाया, दारा, वरारोहा, महिषी, ललना, कान्ता, पत्नी, सहध र्मणी, भार्या, पा णगृहीती- इत्यादि बहुत से नाम हैं, जिनसे स्त्रियों की व भन्न स्थितियों का ज्ञान होता है।

अंग्रेजी आदि अन्य भाषाओं में यह वशेषता नहीं है। जैसेः- अंग्रेजी में मामा, चाचा, ताऊ, मौसा, फूफा के लए एक ही शब्द हैः अंकल। चाची, ताई, बुआ, मौसी, मामी के लए-आण्टी शब्द है। दादा और नाना के लए एक ही सामान्य शब्द है- 'ग्राण्डफादर', तथा दादी और नानी के लए 'ग्राण्डमदर'। ऐसी स्थिति में अंकल कहने से पता नहीं चलता क इससे मामा, चाचा, आदि में से कसको बताया जा रहा है? एक बार बी.बी.सी. के समाचारों में मैंने सुना क श्री राजीव गाँधी के दादा स्वतन्त्र भारत के पहले प्रधानमन्त्री बने। जब क दादा के स्थान पर नाना कहना चाहिए था। इस त्रुटि का कारण था, दोनों के लए प्रयुक्त 'ग्राण्डफादर' शब्द । अंग्रेजी में प्राप्त समाचार का अनुवाद 'नाना' के स्थान पर 'दादा' हो गया।

इतना वशाल शब्द भण्डार होते हुएी उसका शदार्थ समझने में वशेष कठिनाई नहीं होती, क्योंेिक संस्कृत के शदों के अर्थ उसके धात्वर्थ से उनके अन्दर ही वद्यमान होते हैं । उदारणार्थः- 'सृष्टि, जगत् और संसार'- इन शदों से वश्व की यथार्थ सत्ता का बोध होता है। 'सृज्' धातु का अर्थ है- रचना, बनाना। इससे 'क्तिन्' -प्रत्यय लगाकर 'सृष्टि' शब्द बनता है। इससे पता चलता है क यह वश्व बनाया हुआ है, रचा गया है। फर 'गच्छति इति जगत्' से ज्ञान होता है क वश्वचलता है, गतिशील है। 'सम्' उपसर्ग सहित 'सृ' का अर्थ है-गति करना, चलना, बहना आदि। इससे ज्ञात होता है क यह वश्व गतिशील है, चलता है और संसरणशील (परिवर्तनशील) है। इस प्रकार संसार- वषयक बहुत सी बातें इन तीन शदों से ही ज्ञात हो जाती है। अंग्रेजी के ङ्खशह्म्द्यस्र- इस शब्द से वश्व का स्थिति वषयक कोई बोध नहीं होता। इसी प्रकार महिला (पूजनीया, समाननीया), पता (रक्षक, पालक), माता (सन्तान से सर्वा धक स्नेह / प्रीति करने वाली), पात्र (रक्षक, भोज्यसाधन), वस्त्र (आच्छादित करने वाला), लेखनी (लखने का साधन) आदि शदों से उनके कार्यों / उपयोगों का ज्ञान जिस सरलता से हो जाता है, वैसा इनके अंग्रेजी शदों क्रमशः 'लेडी, फादर, मदर, पॉट, क्लॉथ, पैन' से नहीं होता।

संस्कृत – व्याकरण की यौ गक – अर्थबोधकता के कारण ही हम वेदों तथा हजारों वर्ष पूर्व लख गये शाखा- उपवेद- ब्राह्मण- आरण्यक- उपनिषद्- वेदाङ्ग- साहित्य- आयुर्वेद- वज्ञान- ग णत- रामायण- महाभारत- गीता आदि ऋ ष-मुनियों के बनाये हुए सभी ग्रन्थों को सुगमता से समझ सकते हैं, जब क हमारी प्रान्तीय भाषाओं में लखे 2-3सौ वर्ष पुराने ग्रन्थाी आज हमारे लए दुरूह हो जाते हैं।

'आङ्ग्ल-भाषा (अंगेजी)का इतिहास' नामक ग्रन्थ में आङ्ग्ल – भाषा, यूरोपीय भाषाओं में समृद्ध भाषा के रूप में बतायी गयी है। उसमें कपेण्डियस- ऑक्सफोर्ड- डक्सनरी के आधार पर जर्मन भाषा में 1,85,000; फ्रेंच भाषा में 1,00,000 और आङ्ग्ल- भाषा में 5,00,000+5,00,000 (सांकेतिक, वैज्ञानिक)= 10,00,000 शब्द बताये गये हैं। ऑक्सफोर्ड डक्शनरी में अंग्रेजी शदों की संया 6,50,000 बतायी गयी है।

इससे आप संस्कृत – भाषा के महत्त्व एवं उसके भाव प्रकट करने के सामर्थ्य का अनुमान कर सकते हैं।

18वीं शतादी में जब इस संस्कृत भाषा का प्रवेश योरोप में हुआ, तो पाश्चात्य वद्वानों में नये उत्साह और हर्ष की लहर- सी दौड़ गयी तथा तुलनात्मक भाषा- वज्ञान एवं तुलनात्मक वेद- वज्ञान जैसे नये शास्त्रों की रचना होने लगी। मैक्समूलर, मैक्डोनेल्ड, गोल्ड्स्टुकर, वल्सन, कीथ, वंटरनिट्ज, रॉथ, ग्रासमान जैसे सैकड़ों वद्वानों ने अपने जीवन को उसके अयास और अनुसन्धान में लगा दिया। योरोप और अमेरिका के हर वश्व वद्यालय में तथा जापान, रूस आदि के वश्व वद्यालयों में संस्कृत – भाषा के अध्ययन और अनुसन्धान के लए पीठों का निर्माण हुआ। वैदिक शोध और भाषा – वज्ञान वषयक महान् ग्रन्थों की रचना हुई । देववाणी संस्कृत में आकाशवाणी से वार्ता-प्रसारण भी सर्वप्रथम जर्मनी के कोलोन केन्द्र से प्रारभ हुआ, उसके वर्षों बाद हमने भारत में प्रारभ कया।

अमेरीका के 'नासा' नामक सैन्य अनुसन्धान केन्द्र और संगणक (कप्यूटर) के कुछ वशेषज्ञों ने संगणक पर मानवीय भाषा के जो प्रयोग कये हैं, उसमें संस्कृत सबसे उपयुक्त पायी गयी है। इन वैज्ञानिकों ने अपने 25 वर्ष के अनुसन्धान के पश्चात् दावा कया है क संगणक की यान्त्रिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लए कसी भी अन्य भाषा की तुलना में संस्कृत की संरचना ही सबसे उपयुक्त है। 'नासा' के वैज्ञानिकों की यह उपल ध भारत के लए बड़े गौरव और महत्त्व की बात है, परन्तु बड़े खेद का वषय है क आज उस सुरभारती की जन्मस्थली भारतवर्ष में ही उसका ह्रास बड़ी तेजी से हो रहा है। तथाक थत त्रिभाषा -सूत्र के नाम पर आज उसको पाठ्यक्रम से निकाला जा रहा है। देश की सबसे बड़ी और अमूल्य धरोहर से ही देश की युवा पीढ़ी को वं चत कर दिया गया है ।

अन्त में हम परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं क वह इस देश के कर्णधारों एवं जनता के हृदय में अपूर्व अनुराग एवं भक्तिभावना भरे, जिससे भारत पुनः वश्वगुरु का पद प्राप्त कर सके।।

'ईश्वर व जीवात्मा के यथार्थ ज्ञान में आधुनिक वज्ञान भ्र मत है।' -मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

आज का युग वज्ञान का युग है। वज्ञान ने मनुष्य का जीवन जहां आसान व सु वधाओं से पूर्ण बनाया है वहां अनेक समस्यायें एवं सामाजिक वषमतायें आदि भी उत्पन्न हुई हैं। वज्ञान व ज्ञान से युक्त मनुष्यों से अपेक्षा की जाती है क वह जिस बात को जितना जाने उतना कहें और जहां उनकी पहुंच न हो तो उस पर मौन रहें। परन्तु हम देखते हैं क सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर और जीवात्मा के वषय में आधुनिक वज्ञान आज भी भ्रम की स्थिति में है। इन दोनों सत्ताओं ईश्वर व जीवात्मा के अस्तित्व का सत्य ज्ञान व वज्ञान वैज्ञानिकों के पास नहीं है। बहुत से वैज्ञानिक ऐसे हैं जो ईश्वर व आत्मा की स्वतन्त्र, पृथक, अनादि व अमर सत्ता में वश्वास ही नहीं रखते। बहुत से वैज्ञानिक नहीं कन्तु कथाक थत बुद् धजीवी ऐसे भी हैं जिनका अध्यात्म व वज्ञान से कोई वास्ता नहीं रहा है, वेद व वैदिक साहित्य उन्होंने देखा व पढ़ा ही नहीं, फर भी वह अपने मथ्या वश्वास, अ ववेक व दम्भ के कारण ईश्वर व जीवात्मा को नहीं मानते। इसके वपरीत भारत और वश्व में भी बहुत से वैज्ञानिक ऐसे मल जायेंगे जो अपने अपने मत-पन्थ-सम्प्रदाय के ईश्वर व जीवात्मा संबंधी वश्वासों, जो अ धकांशतः अन्ध वश्वास की श्रेणी में हो सकते हैं, को मानते हैं और वज्ञान को भी। हम समझते हैं क वर्तमान इक्कीसवीं शताब्दी में वज्ञान व वैज्ञानिकों को एक बार पुनः ईश्वर व जीवात्मा के अस्तित्व के बारे में व्यापक रूप से पुन र्वचार कर निश्चित करना चाहिये क क्या यह दोनों पदार्थ व सत्तायें वस्तुतः हैं भी या नहीं और क्या यह दोनों सत्तायें वज्ञान की सीमा में आती भी हैं या नहीं। ऐसा करने से पूर्व उन्हें वैदिक वचारधारा का भी व्यापक अध्ययन कर लेना चाहिये जिससे ईश्वर व जीवात्मा के वषयक में नया यथार्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण बनाने में उन्हें सहायता मलेगी।

आईये, मनुष्य जीवन की चर्चा करते हैं। मनुष्य जीवन में एक चेतन अ वनाशी तत्व जीवात्मा होता है और दूसरा जीवात्मा का भौतिक शरीर होता है। भौतिक शरीर प्राकृतिक पदार्थों से बना वा अन्नमय होने के कारण आंखों से दिखाई देता है। अतः इसके अस्तित्व में कसी को कं चत भी शंका नहीं होती। व्यवहार में भी सभी कहते हैं क यह मेरा सर है, मेरे पैर, मेरी भुजा, मेरा शरीर है, आदि आदि। न केवल हिन्दी भाषा में ऐसा प्रयोग होता है अ पतु अंग्रेजी में भी यही कहेंगे क दीज आर माई आईज, दीज आर माई हैण्ड्स, इट्स माई नैक आदि। अन्य भाषाओं में भी ऐसा ही प्रयोग होना सम्भव है। यह कोई नहीं कहता क यह हाथ मेरे शरीर के नहीं मेरी जीवात्मा के अंग हैं तथा इनके बिना मैं व मेरी आत्मा अधूरी व अपूर्ण है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है क मैं, अर्थात् जीवात्मा, कुछ और है और यह जो “मेरे” नाम से सम्बो धत कये जाते हैं वह मुझसे भन्न हैं परन्तु यह सभी मेरे अपने हैं जिस प्रकार से मेरी पुस्तक, मेरा घर, मेरे गुरूजी, माता व पता आदि होते हैं। वैज्ञानिक भी बोल चाल व लेखन में इसी प्रकार का प्रयोग करते हैं। इससे तो यही सद् ध होता है क शरीर व मैं अलग अलग हैं। जब कहीं कसी की मृत्यु होती है तो कहते हैं क अमुक व्यक्ति नहीं रहा, मर गया, चल बसा। नहीं रहा का अर्थ है कुछ समय पूर्व तक शरीर में था परन्तु अब शरीर में नहीं रहा अथवा है। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता की उस व्यक्ति का अस्तित्व भी पूरी तरह से समाप्त हो गया है अर्थात् उसका पूर्ण अभाव हो गया है। मर गया भी यह बताता है क कोई व्यक्ति अब जी वत नहीं है, मर गया है, मरने से पहले े वह जी वत था। मृत्यु होने से वह व्यक्ति शरीर में से कहीं चला गया है, इस लए कहते हैं क मर गया। यही स्थिति

चल बसा शब्दों की भी है। चल गति को बता रहा है और बसा शरीर की क्रयाशून्यता को क यह नहीं गया यह बसा अर्थात् यहीं है। ऐसे अनेक उदाहरण लये जा सकते हैं जिससे शरीर में शरीर से पृथक एक चेतन तत्व के होने के संकेत मलते है।

हम जिस सृष्टि या संसार में रहते हैं उसको बने व चलते हुए 1 अरब 96 करोड़ से अ धक वर्ष हो गये हैं। इस अव ध में मनुष्यों की लगभग 78 हजार पीढियां बीत गई हैं अर्थात् हमारे माता- पता, उनके माता- पता, फर उनके और फर उनके माता- पता, इस प्रकार पीछे चलते जाये तो लगभग 78 हजार पूर्वज व उनके संबंधी बीत चुके हैं अर्थात् वह जन्में और मर गये। हमारे इन पूर्वजों ने अपनी बुद् ध, ज्ञान व अनुभव से अपने जीवन काल में आध्यात्मिक क्षेत्र में भी अनुसंधान कार्य कये और वैज्ञानिकों की तरह से अनेक शास्त्रों व ग्रन्थों की रचना की। मध्यकाल व उसके बाद वध र्मयों ने नालन्दा व तक्ष शला सहित अन्य अनेक हमारे बड़े बड़े पुस्तकालयों को अग्नि को सम पंत कर ज्ञान व वज्ञान की भारी हानि की। इस दुर्भाग्य में भी कुछ सौभाग्य शेष रहा और वह है क वेद, दर्शन, उपनिषदें, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, आयुर्वेद आदि अनेक ग्रन्थ जिनमें ईश्वर व जीवात्मा का हमारे पूर्वजों द्वारा अनुभूत ज्ञान भरा पड़ा है, सुर क्षत रहे। वह ज्ञान क्या कहता है, यह हमें देखना चाहिये। वस्तुतः मह र्ष दयानन्द ने इन सभी ग्रन्थों को देखा, पढ़ा व समझा तथा इन ग्रन्थों की वज्ञान व ज्ञान तथा सांसारिक परिवेश एवं ऊहापोह कर इनकी परस्पर संगति लगाई और वेद, 6 दर्शन, 11 उपनिषद, प्रक्षेप रहित मनुस्मृति तथा अन्य अनेक ग्रन्थों की मान्यताओं को सत्य पाया। यह सभी ग्रन्थ एक स्वर से घोषणा करते हैं क संसार में ईश्वर, जीव व प्रकृति अनादि, नित्य व अमर हैं।

इस संदर्भ में एक तथ्य यह भी है क वैज्ञानिकों की दृष्टि में वेद व र्णत ईश्वर का वह स्वरूप स्पष्ट व सर्वांगपूर्ण रूप में सामने नहीं आया जिसका चत्रण दर्शनों, उपनिषदों व मह र्ष दयानन्द के अनेक ग्रन्थों में हुआ है। इसके लए वैज्ञानिकों ने न तो प्रयास कया और न इन मान्यताओं व वचारधारा के मानने वाले वद्वान उच्च व वरिष्ठ वैज्ञानिकों तक पहुंच सके। इस कारण ईश्वर का वेदव र्णत स्वरूप वैज्ञानिकों के सम्मुख नहीं आ सका। हमें लगता है क संसार के प्रमुख वैज्ञानिकों के सम्मुख ईश्वर का जो स्वरूप आया, वह पूर्ण व आं शक रूप से ईसाई मत की पुस्तक बाइबिल व संसार में प्रच लत अन्य मत-मतान्तरों में व र्णत ईश्वर के स्वरूप थे। यह स्वाभा वक है क यदि कोई बाइबिल व अन्य मतों में व र्णत ईश्वर के स्वरूप पर वचार करे तो वह एकदेशी, अल्प ज्ञान व शक्तिवाला, मनुष्य शरीर के कुछ कुछ समान आदि है एवं इन मतों में वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ व सर्वान्तर्यामी नहीं है। अतः यदि वैज्ञानिकों ने इस स्वरूप के आधार पर कहा क ईश्वर नाम की सत्ता नहीं है, तो इसमें हमें कोई आश्चर्य नहीं होता। वह एक प्रकार से ठीक ही है। दूसरा कारण यह भी है क ईश्वर अतिसूक्ष्म होने के कारण आंखों से दृष्टिगोचर नहीं होता। वैज्ञानिक स्थूल प्रकृति व कार्यसृष्टि के पदार्थों का अध्ययन कर अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति संबंधी उनके निष्कर्ष प्रायः सत्य ही होते हैं व कुछ में समय के साथ साथ सुधार होता रहता है। वैज्ञानिकों के इन कार्यों से मानव जाति का अकथनीय उपकार भी हुआ है। परन्तु यथार्थ ईश्वर सृष्टि व पंचभूतों के समान कोई पदार्थ न होकर इनसे सर्वथा पृथक एक सर्वातिसूक्ष्म चेतन,

सर्वव्यापक, निराकार, सर्वज्ञ, ज्ञान व वज्ञान से पूर्ण एवं संसार को रचने, पालन करने वाली सर्वशक्तिमान सत्ता है। इस ईश्वर की सत्ता को अन्य प्राकृतिक वा भौतिक पदार्थों की तरह परीक्षण कर प्रयोगशाला में जाना व सद्ध नहीं कया जा सकता। यह भी कहा जा सकता है क ईश्वर को भौतिक वज्ञान के तौर तरीकों से जाना व सद्ध नहीं कया जा सकता अ पतु यह पूरा का पूरा वषय योग व ध से शरीर में हृदय के भीतर स्थित जीवात्मा में ईश्वर के गुणों व उपकारों का वर्णन सहित ध्यान करने पर साक्षात व प्रत्यक्ष होता है। इसके लए ध्यान करने वाले मनुष्य का भोजन व आचरण का शुद्ध व प वत्र होना भी आवश्यक है। वैज्ञानिकों को यदि ईश्वर को जानना है तो उन्हें इसी प्र क्रया से गुजरना होगा अन्यथा उनके वा अन्य कसी के हाथ कुछ नहीं लगेगा। इसका अर्थ यह हुआ क संसार में जिस कसी को भी ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानने की इच्छा हो उसको वेद और वैदिक साहित्य के साथ मह र्ष दयानन्द के ग्रन्थों की सहायता लेनी होगी। यदि वह ऐसा करेंगे तो उनका ईश्वर जानने व प्राप्ति का रास्ता सरल हो जायेगा।

अब वेदादि शास्त्र व र्णत ईश्वर के स्वरूप पर एक दृष्टि डालकर उसे जान लेते हैं। ईश्वर कैसा है, कहां है क्या करता, उसकी उत्प त्त कब व कैसे हुई, उसने यह संसार क्यों बनाया आदि अनेक प्रश्नों का उत्तर वैदिक साहित्य में उपलब्ध है। वैदिक साहित्य के अनुसार ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सब सत्य ही हैं। वह केवल चेतन मात्र वस्तु है। वह अद् वतीय, सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्य गुणों वाला है। उसका स्वभाव अ वनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध न्यायकारी, दयालु और अजन्मा आदि है। उसका कर्म जगत् की उत्प त्त और वनाश करना तथा सब जीवों को पाप-पुण्यों के फल ठीक ठीक पहुंचाना है। ऐसे गुण-कर्म-स्वभाव और स्वरूप वाला पदार्थ ही ईश्वर है। यह भौतिक पदार्थों की भांति वज्ञान की प्रयोगशाला में सद्ध नहीं कया जा सकता अ पतु इसका अध्ययन, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, वचार, चन्तन, ध्यान व उपासना आदि के करने से हृदय में इसका प्रत्यक्ष व साक्षात ज्ञान होता है। ईश्वर के बारे में कुछ और भी जान लेते हैं। ईश्वर के बिना न वद्या और न ही सुख की प्राप्ति हो सकती है। ईश्वर वद्वानों का संग, योगाभ्यास और धर्माचरण के द्वारा प्राप्त होता है। ऐसे ईश्वर की ही सब मनुष्यों को उपासना करनी चाहिये। यह उनका मुख्य कर्तव्य भी है क वह सत्- चत्-आनन्दस्वरूप, नित्य ज्ञानी, नित्यमुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, कृपालु, सब जगत् के जनक और धारण करनेहारे परमात्मा की ही सदा प्रातः व सायं उपासना करें क जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो मनुष्य देहरूप वृक्ष के चार फल हैं वे उसकी भक्ति और कृपा से सर्वदा सब मनुष्यों को प्राप्त हुआ करें। इस संसार को बनाने व संचा लत करने वाला ईश्वर सब समर्थों में समर्थ, सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध, नित्यमुक्त स्वभाववाला, कृपा सागर, ठीक-ठीक वा सत्य न्याय का करनेवाला, जन्म-मरण आदि क्लेश रहित, निराकार, सबके घट-घट का जाननेहारा, सबका धत्र्ता, पता, उत्पादक, अन्नादि से वश्व का पालन-पोषण करनेहारा, सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत् का निर्माता, शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है। उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतनस्वरूप है उसी को हम धारण करें अर्थात् ईश्वर के स्वरूप को अपने जीवन में समा वष्ट कर उसके अनुरूप ही आचरण व सम्पूर्ण व्यवहार करें। ऐसा करने से वह परमेश्वर हमारी आत्मा और बुद् ध का अपने अन्तर्यामी स्वरूप से हमको दुष्टाचार अधर्मयुक्त मार्ग से हटा के श्रेष्ठाचार और सत्यमार्ग में चलाता है। उस प्रभु को छोड़कर हम

और कसी का ध्यान न करें, क्यों क न कोई उसके तुल्य और न अ धक है। वही हमारा पता, राजा, न्यायाधीश और सब सुखों का देनेवाला है। वह ईश्वर हम सबका उत्पन्न करनेवाला, पता के तुल्य रक्षक, सूर्यादि प्रकाशों का भी प्रकाशक व सर्वत्र अ भव्याप्त है। हमारा ईश्वर सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, नि र्वकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य प वत्र और सृष्टि का रचयिता व पालक है। ईश्वर को जानकर सभी मनुष्यों को उसका भजन करना चाहिये जिससे उसकी कृपा होकर हमें वज्ञान, दीर्घायु और जीवन के हर क्षेत्र में सफलता व वजय प्राप्त हो सके।

लेख को वराम देने से पूर्व हम संक्षेप में पुनः कहना चाहते हैं क वज्ञान ने मानव जाति की उन्नति व सु वधा के लए जो जो अनुसंधान आदि कार्य कर उनके अनुरूप पदार्थों का उत्पादन कया है, उसके लए समूची मानव जाति उनकी ऋणी व कृतज्ञ है। इसके अतिरिक्त यह भी सत्य है क वज्ञान व वैज्ञानिकों का ईश्वर का न मानना उनका एक भ्रम है जिसका कारण ईश्वर का प्राकृतिक पदार्थों से सर्वथा भन्न होना है जिसका प्रयोगशाला में अनुसंधान नहीं कया जा सकता। हम यह भी अनुभव करते हैं क संसार के यदि सभी वैज्ञानिक वेद और वैदिक साहित्य का निष्ठापूर्वक स्वाध्याय, चन्तन, मनन, ऊहापोह, ईश्वर की गुण कीर्तन द्वारा उपासना आदि कार्य करें तो वह निश्चित ही ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को जानकर उसकी सत्ता को स्वीकार कर सकते हैं। इसमें समय लगेगा और भ वष्य में कभी वह ईश्वर को अवश्य स्वीकार करेंगे क्यों क महाभारत व उससे पूर्व के हमारे सभी ऋ ष भी अ धकांशतः ईश्वर ज्ञानी, भक्त, उपासक, योगी व वैज्ञानिक थे। ईश्वर भक्त के साथ साथ वैज्ञानिक होना प्रशंसनीय एवं ज्ञान व वज्ञान के अनुकूल होता है। इसमें परस्पर कहीं कोई वरोधाभाष नहीं है। आशा करनी चाहिये क वह दिन कुछ वर्षों व दशाब्दियों बाद अवश्य आयेगा जब सभी प्रमुख वैज्ञानिक भी ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार कर वैदिक व ध से उपासक बनकर धर्म व वज्ञान की सेवा करेंगे।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः**09412985121**

रक्षाबंधन – स्वाध्याय द्वारा जीव और प्रकृति का रक्षण।

AUGUST 31, 2015 LEAVE A COMMENT

रक्षा बंधन, ये शब्द सुनते ही भाई और बहन का वो प वत्र रिश्ता आँखों के दिखना शुरू हो जाता है जो एक धागे से बंधा होता है।

इस दिन श्रावण मास की पूर्णमासी को ये धागा एक बहिन द्वारा अपने भाई की कलाई में बाँध कर भाई से अपनी रक्षा का वचन लेना बहन का कर्तव्य और भाई का अपनी बहन की रक्षा करने का वचन देना करने से ही पूर्ण हो जाता है ऐसा समझा जाता है, और इस कार्य की इतिश्री करके धागा बंधने से पूर्ण कर दिया जाता है। मगर क्या यही सनातन संस्कृति है ?

ऐसे अनेको प्रमाण मलते हैं की इस प्रकार का रक्षा बंधन सनातन संस्कृति नहीं है बल्कि ये एक ऐतिहा सक तथ्यों पर आधारित कार्य है। इसके पीछे जो ऐतिहा सक तथ्य है उनमे पौरा णक बंधू इन्हे प्रमुखता देते हैं :

1. द्रौपदी का कृष्ण की आकस्मिक अंगुली कटने पर साडी व दुपट्टा का टुकड़ा बाँध देना।

2. कुंती का अपने पौत्र अ भमन्यु को महाभारत युद्ध में कलाई पर रक्षा कवच बाँध देना।

3. पौरा णक दानी दैत्य राजा ब ल का रक्षा बंधन से रक्षा होना।

इन प्रमुख कारणों पर यदि ध्यान से देखा जाए तो भी ये रक्षा बंधन यानी बहन का भाई की कलाई पर राखी बांधना और रक्षा का वचन लेना सनातन संस्कृति सद्ध नहीं होती। क्यों क ये सभी ऐतिहा सक तथ्य हैं और ऐतिहा सक तथ्य कभी सनातन नहीं हो सकते हैं।

आ खर क्या कारण है की एक दिन के लए ही भाई अपनी बहन की रक्षा का वचन देता है ? क्या पुरे साल उसे याद दिलाते रहने के लए ?

मुझे तो नहीं लगता, ले कन यदि कुछ सालो पीछे जाये तो याद आएगा की हमारे देश में मुगलो का राज था जिसमे महिलाओ की अस्मत और आबरू खतरे में थी, मुझे ऐसा लगता है की ये त्यौहार भाई बहन के लए उस समय ज्यादा प्रचलन में आया ता क सामाजिक तौर पर प्रत्येक हिन्दू जाती की महिला को सुरक्षा का भाव मले। केवल अपने भाई से ही नहीं वरन सभी पुरुषो से।

अब सवाल उठेगा की फर ये श्रावण मास की पू र्णमा को रक्षाबंधन क्यों मनाते हैं ? इसका जवाब हमें अपने भारतीय जनजीवन और भौगो लक परिस्थियों अनुरूप मलता है। दे खये हमारा देश कृ ष प्रधान राष्ट्र है, और कृ ष प्रधान राष्ट्र होने के नाते हमारे देश में कृषक समुदाय अ धक हैं या वो लोग जो कृ ष से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हैं। इस लए यदि आप ध्यान देवे तो आप पाएंगे की हमारे देश में आषाढ से लेकर सावन तक फ़सल की बुआई सम्पन्न हो जाती है। ये क्रम आज भी वैसा ही है जैसे पूर्व काल में होता था मगर बदला है आज का साधु समाज क्यों क वैदिक काल में ऋ ष-मुनि अरण्य में वर्षा की अ धकता के कारण गांव के निकट आकर रहने लगते थे। जो गाँव वालो को वेद धर्म की शक्षा देते थे। क्यों क इस समय कृषक समाज अपनी खेती आदि कार्यो से फारिग हो जाता था इस लए इस धा र्मक कृत्य में प्रमुखता से जुड़ता था जिससे देश और धर्म दोनों का ही कल्याण होता था। इसमें पारस्कर गृह सूत्र का प्रमाण है :

अथातोऽध्यायोपाकर्म। औष धनां प्रादुर्भावे श्रावण्यां पौर्णमासस्यम् “ (2/10/2-2)

इसके पीछे जो रहस्य है वो ऊपर बताने और समझाने का प्रयास कया है।

वर्षा ऋतु में वेद के पारायण का वशेष आयोजन इस लए भी कया जाता था क्यों क वर्षा के दौरान बीमारिया फ़ैलाने वाले जीवाणु अ धक उतपन्न होते हैं इस लए इनके निवारण हेतु यज्ञ अ धकमात्रा में होते थे जिसमे वशेष साम ग्रयाँ डाली जाती थी।

यही रक्षाबंधन था उस यज्ञ का और जीव का जिससे प्रकृति की रक्षा होती थी और इसी स्वाध्याय के आधार पर यज्ञ होते थे जिससे वर्षा ऋतु में उत्पन्न हुए अनेको वषाणुओं का जो गंभीर बीमारियां उत्पन्न करते थे उनसे यज्ञ द्वारा जीव और प्रकृति की रक्षा होती थी, स्वाध्याय करते हुए नित नए औष ध युक्त साम ग्रयों का निर्माण करना और यज्ञ करते हुए प्रकृति, कृ ष और जीव इनकी रक्षा करना यही बंधन को ऋ ष समझते थे, ज्ञान देते थे।

आज भी अनेको गुरुकुलों में पू र्णमा को गुरुकुलों में वद्या र्थयों का प्रवेश हुआ करता है। इस दिन को वशेष रुप से वद्यारंभ दिवस के रुप में मनाया जाता है। बटूकों का यज्ञोपवीत संस्कार भी कया जाता है। श्रावणी पू र्णमा को पुराने यज्ञोपवीत को धारण करके नए यज्ञोपवीत को धारण करने की परम्परा भी रही है।

भले ही इस प वत्र परंपरा को आज लोग भूल गए क्यों क वो वेदो से वमुख होकर अनार्ष ग्रंथो के अध्यन में रत हुए मगर ये भी सत्य है की पूरी तरह से सद्धांतो को न बदल पाये, मुगल काल में महिलाओ की रक्षा हेतु रक्षाबंधन का वचन देकर अपनी बहनो माताओ की रक्षण करना, यज्ञोपवीत धारण करना आदि अनेको भ्रान्तिया भी चली मगर सत्य सनातन वैदिक मत यही है की हम वेद और वज्ञानं आधारित बातो को माने क्यों क सत्य वही है।

केवल भाई बहन तक सी मत न रहकर, इस प वत्र त्यौहार को पुरे वश्व बंधुत्व की और ले जाए, अग्रसर हो इस प वत्र त्यौहार को वैदिक रीति से मनाने के लए, क्यों क ये केवल भाई बहन तक सी मत नहीं रखा जा सकता।

आइये लौटियो उसी सनातन संस्कृति की और, लौटिए उस वज्ञानं की और जो ऋ षयों ने वेदो के द्रष्टा बनकर हमें दिया। आइये लौटियो वेदो की और।

नमस्ते।

वेदो का वज्ञानं मानवमात्र के लए

JULY 28, 2015 1 COMMENT

।। ओ३म ।।

अयं त इध्म आत्मा जातवेदः।

“हे अग्ने ! तेरे लए सबसे पहला ईंधन “अयं आत्मा” – अर्थात यह यजमान – स्वयं है।”

वेदो का वज्ञानं मानवमात्र के लए :

क्षयरोग (TB – Tuberculosis) से बचाव और उपचार करता है यज्ञ।

सूर्य का प्रकाश मनुष्य के लए वैसे भी लाभदायक है। इससे शरीर में वटा मन डी बनता है, जिससे हड् डयां पुष्ट होती हैं। उदय और अस्त होने वाले सूर्य की करणे तो और भी अ धक गुणकारी होती हैं।

उद्यन्नादित्यः क्र महन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मि भः।
ये अन्तः क्रमयो ग व।।

(अथर्ववेद २।३२।१)

"उदय होता हुआ और अस्त होने वाला सूर्य अपनी करणों से भू म और शरीर में रहने वाले रोगजनक कीटो का नाश करता है।"

सूर्य का प्रकाश कृ मनाशक है। रोबर्ट काउच ने सन १८९० में अनेको प्रयोगो द्वारा यह सद्ध कया की क्षयरोग (फेफड़ो के क्षयरोग को छोड़कर) के कीटाणु इस प्रकाश में दस मनट से अ धक समय तक जी वत जी वत नहीं रह सकते। इस लए क्षयरोग से ग्रस्त व्यक्ति को धुप सेकनी चाहिए।

संभवतः जनसाधारण में इसको यह कहकर मान्यता प्रदान की जाती है की अँधेरे में क्षयरोग फूलता फलता है तथा प्रकाश में यह दम दबाकर भाग जाता है।

अतः यज्ञ के लए सूर्योदय के पश्चात तथा सूर्यास्त से पूर्व का समय ही ठीक है।

आधुनिक वज्ञानं के अनुसार सूर्य की धुप क्षयरोग के लए बचाव और उपचार दोनों है

http://www.dailymail.co.uk/…/Sunshine-vitamin-helps-treat-p…

अब इस समय पर यज्ञ करना लाभदायक ही होगा क्यों क यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली सामग्री में मुख्य रूप से गौघृत, खांड अथवा शक्कर, मुनक्का, कश मश आदि सूखे फल जिनमे शक्कर अ धक होती है, चावल, केसर और कपूर आदि के संतु लत मश्रण से बनी होती है।

अब इस वषय पर कुछ वैज्ञानिको के वचार :

१. फ्रांस के वज्ञानवेत्ता ट्रिलवर्ट कहते हैं : जलती हुई शक्कर में वायु – शुद्ध करने की बहुत बड़ी शक्ति होती है। इससे क्षय, चेचक, हैजा आदि रोग तुरंत नष्ट हो जाते हैं।

२. डॉक्टर एम टैल्ट्र ने मुनक्का, कश मश आदि सूखे फलो को जलाकर देखा है। वे इस निर्णय पर पहुंचे हैं की इनके धुंए में टायफाइड ज्वर के रोगकीट केवल तीस मनट तथा दूसरी व्या धयों के रोगाणु घंटे – दो घंटे में मर जाते हैं।

३. प्लेग के दिनों में अब भी गंधक जलाई जाती है, क्यों क इसमें रोगकीट नष्ट होते हैं। अंग्रेजी शासनकाल में डाकटर करनल कंग, आई एम एस, मद्रास के सेनेटरी क मश्नर थे। उनके समय में वहां प्लेग फ़ैल गया। तब १५ मार्च १८९८ को मद्रास वश्व वद्यालय के

 वद्या र्थयों के समक्ष भाषण देते हुए उन्होंने कहा था – "घी और चावल में केसर मलकर अग्नि में जलाने से प्लेग से बचा जा सकता है।" इस भाषण का सार श्री हैफ कन ने "ब्यूबॉनिक प्लेग" नामक पुस्तक मे देते हुए लखा है, "हवन करना लाभदायक और बुद् धमत्ता की बात है।"

मह र्ष दयानंद ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लखा है :

"जब तक इस होम करने का प्रचार रहा ये तब तक ये आर्यवर्त देश रोगो से रहित और सुखो से पूरित था अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाए।"

(स. प्र. तृतीय समुल्लास)

यहाँ ऋ ष इसी वज्ञानं को समझाने की को शश कर रहे हैं जो आज का आधुनिक वज्ञानं मानता है।

कृपया यज्ञ करे – राष्ट्र और पर्यावण को सुखी बनाये

आओ लौटो वेदो की और।

नमस्ते

नोट : इस पोस्ट की कुछ सामग्री "यज्ञ वमर्श" पुस्तक से उद्धृत है।

अनवर जमाल साहब की पुस्तक "दयानंद जी ने क्या खोया क्या पाया" के प्रतिउत्तर में :

JULY 28, 2015 11 COMMENTS

।। ओ३म ।।जनाब अनवर जमाल साहब ऋ ष के ज्ञान और वेद के वज्ञानं पर शंका उत्पन्न करते हुए लखते हैं :

यदि दयानन्द जी की अ वद्या रूपी गांठ ही नहीं कट पायी थी और वह परमेश्वर के सामीप्य से वं चत ही रहकर चल बसे थे तो वह परमेश्वर की वाणी `वेद´ को भी सही ढंग से न समझ पाये होंगे? उदाहरणार्थ, दयानन्दजी एक वेदमन्त्र का अर्थ समझाते हुए कहते हैं-
`इसी लए ईश्वर ने नक्षत्रलोकों के समीप चन्द्रमा को स्था पत कया।´ (ऋग्वेदादि0, पृष्ठ 107)
(17) परमेश्वर ने चन्द्रमा को पृथ्वी के पास और नक्षत्रलोकों से बहुत दूर स्था पत कया है, यह बात परमेश्वर भी जानता है और आधुनिक मनुष्य भी। फर परमेश्वर वेद में ऐसी सत्य वरूद्ध बात क्यों कहेगा?
इससे यह सद्ध होता है क या तो वेद ईश्वरीय वचन नहीं है या फर इस वेदमन्त्र का अर्थ कुछ और रहा होगा और स्वामीजी ने अपनी कल्पना के अनुसार इसका यह अर्थ निकाल लया । इसकी पुष्टि एक दूसरे प्रमाण से भी होती है, जहाँ दयानन्दजी ने यह तक कल्पना कर डाली क सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रादि सब पर मनुष्यदि गुज़र बसर कर रहे हैं और वहाँ भी वेदों का पठन-पाठन और यज्ञ हवन, सब कुछ कया जा रहा है और अपनी कल्पना की पुष्टि

में ऋग्वेद (मं0 10, सू0 190) का प्रमाण भी दिया है-
`जब पृ थवी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात उनमें इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह? और जैसे परमेश्वर का यह छोटा सा लोक मनुश्यादि सृष्टि से भरा हुआ है तो क्या ये सब लोक शून्य होंगे? (सत्यार्थ., अश्टम. पृ. 156)
(18) क्या यह मानना सही है क ईश्वरोक्त वेद व सब वद्याओं को यथावत जानने वाले ऋ ष द्वारा र चत साहित्य के अनुसार सूर्य व चन्द्रमा आदि पर मनुष्य आबाद हैं और वो घर-दुकान और खेत ख लहान में अपने-अपने काम धंधे अंजाम दे रहे हैं?

समीक्षा : अब हमारे जनाब अनवर जमाल साहब कुरान के इल्म से बाहर निकले तो कुछ ज्ञान वज्ञानं को समझे पर क्या करे अल्लाह मया ने कुरान में ऐसा ज्ञान नाज़िल कया की जमाल साहब उसे पढ़कर ही खुद आ लम हो गए। दे खये जमाल साहब ऋ ष ने क्या कहा और उसका अर्थ क्या निकलता है :

ऋ ष ने लखा :

`इसी लए ईश्वर ने नक्षत्रलोकों के समीप चन्द्रमा को स्था पत कया।´ (ऋग्वेदादि0, पृष्ठ 107)

अब इसका फलसफा और वज्ञानं देखो – ऋ ष को वेदो से जो ज्ञान और वज्ञानं मला वो इन जमाल साहब को नजर नहीं आएगा –

आकाश में तारा-समूह को नक्षत्र कहते हैं। साधारणतः यह चन्द्रमा के पथ से जुडे हैं, पर वास्तव में कसी भी तारा-समूह को नक्षत्र कहना उ चत है।

ऋ ष का अर्थ है क्यों क चन्द्रमा नक्षत्रो के पथ से जुड़ा है इस लए अलंकार रूप में वहां लखा है की नक्षत्रलोको के समीप चन्द्रमा को स्था पत कया –

अब इसका वैज्ञानिक प्रभाव देखो :

तारे हमारे सौर जगत् के भीतर नहीं है। ये सूर्य से बहुत दूर हैं और सूर्य की परिक्रमा न करने के कारण स्थिर जान पड़ते हैं—अर्थात् एक तारा दूसरे तारे से जिस ओर और जितनी दूर आज देखा जायगा उसी ओर और उतनी ही दूर पर सदा देखा जायगा। इस प्रकार ऐसे दो चार पास-पास रहनेवाले तारों की परस्पर स्थिति का ध्यान एक बार कर लेने से हम उन सबको दूसरी बार देखने से पहचान सकते हैं। पहचान के लये यदि हम उन सब तारों के मलने से जो आकार बने उसे निर्दिष्ट करके समूचे तारकपुंज का कोई नाम रख लें तो और भी सुभीता होगा। नक्षत्रों का वभाग इसी लये और इसी प्रकार कया गया है।

चंद्रमा २७-२८ दिनों में पृथ्वी के चारों ओर घूम आता है। खगोल में यह भ्रमणपथ इन्हीं तारों के बीच से होकर गया हुआ जान पड़ता है। इसी पथ में पड़नेवाले तारों के अलग अलग दल बाँधकर एक एक तारकपुंज का नाम नक्षत्र रखा गया है। इस रीति से सारा पथ इन २७ नक्षत्रों में वभक्त होकर 'नक्षत्र चक्र' कहलाता है। नीचे तारों की संख्या और आकृति सहित २७ नक्षत्रों के नाम दिए जाते हैं।

इन्हीं नक्षत्रों के नाम पर महीनों के नाम रखे गए हैं। महीने की पू र्णमा को चंद्रमा जिस नक्षत्र पर रहेगा उस महीने का नाम उसी नक्षत्र के अनुसार होगा, जैसे कार्तिक की पू र्णमा को चंद्रमा कृ त्तका वा रोहिणी नक्षत्र पर रहेगा, अग्रहायण की पू र्णमा को मृग शरा वा आर्दा पर; इसी प्रकार और सम झए।

ये ज्ञान और वज्ञानं वेदो में ही दिखता है क़ुरान में नहीं जमाल साहब।

क़ुरान का वज्ञानं हम दिखाते हैं जरा गौर से दे खये :

1. अल्लाह मयां तो क़ुरान में चाँद को टेढ़ी टहनी ही बनाना जानता है :

और रहा चन्द्रमा, तो उसकी नियति हमने मंज़िलों के क्रम में रखी, यहाँ तक क वह फर खजूर की पूरानी टेढ़ी टहनी के सदृश हो जाता है
(क़ुरआन सूरह या-सीन ३६ आयत ३९)

क्या चाँद कभी अपने गोलाकार स्वरुप को छोड़ता है ? क्या अल्लाह मयां नहीं जानते की ये केवल परिक्रमा के कारण होता है ?

2. सूरज चाँद के मुकाबले तारे अ धक नजदीक हैं :

और (चाँद सूरज तारे के) तुलूउ व (ग़ुरूब) के मक़ामात का भी मा लक है हम ही ने नीचे वाले आसमान को तारों की आरइश (जगमगाहट) से आरास्ता कया।
(सूरह अस्साफ़्फ़ात ३७ आयत ६)

क्या अल्लाह मया भूल गए की सूरज से लाखो करोडो प्रकाश वर्ष की दूरी पर तारे स्थित हैं ?

3. क़ुरान के मुताबिक सात ग्रह :

ख़ुदा ही तो है जिसने सात आसमान पैदा कए और उन्हीं के बराबर ज़मीन को भी उनमें ख़ुदा का हुक्म नाज़िल होता रहता है – ता क तुम लोग जान लो क ख़ुदा हर चीज़ पर कादिर है और बेशक ख़ुदा अपने इल्म से हर चीज़ पर हावी है।

(सूरह अत तलाक़ ६५ आयत १२)

क्या सात आसमान और उन्ही के बराबर सात ही ग्रह हैं ? क्या खुदा को अस्ट्रोनॉमर जितना ज्ञान भी नहीं की आठ ग्रह और पांच ड्वार्फ प्लेनेट होते हैं।

4. शैतान को मारने के लए तारो को शूटिंग मसाइल बनाना भी अल्लाह मया की ही करामात है।

और हमने नीचे वाले (पहले) आसमान को (तारों के) चराग़ों से ज़ीनत दी है और हमने उनको शैतानों के मारने का आला बनाया और हमने उनके लए दहकती हुई आग का अज़ाब तैयार कर रखा है।

(सूरह अल-मुल्क ६७ आयत ५)

मगर जो (शैतान शाज़ व नादिर फरिश्तों की) कोई बात उचक ले भागता है तो आग का दहकता हुआ तीर उसका पीछा करता है

(सूरह सूरह अस्साफ़्फ़ात ३७ आयत १०)

क्या अल्लाह को तारो और उल्का पंडो में अंतर नहीं पता जो तारो को शूटिंग मसाइल बना दिया ता क शैतान मारे जावे ? और उल्का पंड जो है वो धरती के वायुमंडल में घुसने वाली कोई भी वस्तु को घर्षण से ध्वस्त कर देती है जो जल्दी हुई गरती है ये सामान्य व्यक्ति भी जानते हैं इसको शैतान को मारने वाले मसाइल बनाने का वज्ञानं खुद अल्लाह मयां तक ही सी मत रहा गया।

रही बात सूर्यादि ग्रह पर प्रजा की बात तो आज वज्ञानं स्वयं सद्ध करता है की सूर्य पर भी फायर बेस्ड लाइफ मौजूद है। ज्यादा जानकारी के लए लंक दे खये :

http://www.theonion.com/article/scientists-theorize-sun-could-support-fire-based-l-34559

अब कसको ज्ञान ज्यादा रहा जमाल साहब ?

आपके क़ुरान नाज़िल करने वाले अल्लाह मया को ?

या वेद को पढ़कर पूर्ण ज्ञानी ऋ ष की उपा ध प्राप्त करने वाले मह ष दयानंद को।

लखने को तो और भी बहुत कुछ लखा जा सकता है मगर आपकी इस शंका पर इतने से ही पाठकगण समझ जाएंगे इस लए अपनी लेखनी को वराम देता हु – बाकी और भी जो आक्षेप आपकी पुस्तक में ऋ ष और सत्यार्थ प्रकाश पर उठाये हैं यथासंभव जवाब देने की को शश रहेगी

खुद पढ़े आगे बढे

लौटो वेदो की और

नमस्ते

वेद, वज्ञानं, और सृष्टि उत्पति के युवा मनुष्य

JUNE 30, 2015 LEAVE A COMMENT

नमस्ते मत्रो,

अमैथुनी सृष्टि के मनुष्य कैसे और कस अवस्था में उत्पन्न हुए होंगे ?

जैसे की आपने वषय पढ़ा – जो बहुत ही गूढ़ है – फर भी हम को शश करेंगे इस वषय पर ध्यान रखकर – वेदो के वज्ञानं को समझने की – वेदो के अनुसार आदि सृष्टि अमैथुनी होती है – पहले समझते हैं ये अमैथुनी सृष्टि क्या है ?

अमैथुनी सृष्टि से अ भप्राय उस सृष्टि से है जिसमे जीवो के शरीर बिना मैथुन (सेक्स) द्वारा उत्पन्न होते हैं – ऐसे शरीर उत्पन्न होने के बाद ही मैथुनी सृष्टि – अभी जो आप देख रहे इस प्रकार संतति उत्पन्न करने वाली होती है।

अब कुछ लोग सोचेंगे – जब प्रकृति का नियम ही मैथुनी सृष्टि से है तो फर कसप्रकार और क्यों अमैथुनी सृष्टि होती है ? कुछ सोचेंगे ऐसा कैसे हो सकता है ? कुछ कहेंगे वेद सदा ही ज्ञान वज्ञान और तर्क की कसौटी पर कसी तथ्य को कसता है मगर यहाँ अमैथुनी सृष्टि के लए कौन सा वज्ञानं और तर्क है ? कुछ भाई बिना कुछ सोचे वचार ही इस पोस्ट को लाइक कर देंगे और कमेंट में अपने वचार भी प्रकट नहीं करेंगे –

खैर पहले हम जांच करते हैं की अमैथुनी सृष्टि कस प्रकार होती है :-

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्य स्वयं आ वशत् ।।

अर्थ : हिंस्रकर्म-अहिंस्र, मृदु (दयाप्रधान) क्रूर, धर्म घृत्यादि-अधर्म, सत्य असत्य, जिसका जो कुछ (पूर्वकल्प का) स्वयं प्र वष्ट था, वह वह उस उस को सृष्टि के समय उस (ईश्वर) ने धारण कराया। (२९)

यथा र्तु लङ्गान्यृतवः स्वयं एव र्तुपर्यये ।
स्वानि स्वान्य भपद्यन्ते तथा कर्मा ण देहिनः।।

अर्थ : जैसे वसंत आदि ऋतुएँ अपने अपने समय में निज निज ऋतु चन्हो को प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्यादि भी अपने अपने कर्मो को पूर्व कल्प के बचे कर्मानुसार प्राप्त हो जाते हैं। (३०)

(मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक २९-३०)

जिस प्रकार प्रलय काल में सभी जीव सुषुप्ति की अवस्था में गहन निद्रा में होते हैं, जैसे ही सृष्टि का समय आता है ईश्वर जीव के पूर्व कल्प के कर्मो अनुसार उ चत फल देकर आदि सृष्टि में उत्पन्न उ चत देह द्वारा फल भोग करवाते हैं।

अब सवाल उठेगा ये देह कैसे बनेगी ?

तो उसका जवाब है –

मह र्ष मनु ने जो ऋतुओं की उपमा देकर आदि अमैथुनी सृष्टि का वर्णन कया है, यह बहुत ही सारग भत है, मह र्ष का आशय कुछ इस प्रकार है जैसे ऋतुओं के चन्ह बिना श्रम वशेष स्वाभा वक ही प्रगट होने लगते हैं। वसंत ऋतू में वृक्षों में वह खमीर गर्मी सर्दी के नियत प्रभाव से उत्पन्न होने लगता है और सर्वत्र बाग़ खले फूलो से भर जाता है। भू म की गर्मी

सर्दी के प्रभाव से ऐसी दशा स्वयमेव ही हो जाती है की स्वयं ही शंखपुष्पी आदि अनेक फूलवाली औषधीय निकल आती हैं।
ठीक ऐसे ही वसंत ऋतू में भू म को यदि गर्भाशय मान ले तो कोई संशय नहीं होगा क्यों क ऋतुओं के परिवर्तन का कारण जल गर्मी की कमीबेसी इसी प्रकार आदि सृष्टि के समय पर पृथ्वी अत्यंत गर्म होती है ऐसा ब्राह्मण ग्रन्थ भी कहते हैं और हाल के वैज्ञानिक भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं –

एक अवस्था में पृथ्वी और द्यौ साथ थे :

इमौ लोको सह सन्तौ व्यैताम। जै० ब्रा० १।१४५

इमौ वै लोको सहास्ताम्। एत० ब्रा० ७।१०।१

शतपत ब्रा० (७।१।२२३) आदि अनेक ब्राह्मण ग्रन्थ में श्लोक पाये जाते हैं जिनका अर्थ है सूर्य और पृथ्वी पहले साथ ही साथ थे। बाद में पृथक हुए

इमौ वै सहास्ताम। ते वायु वर्यवात। तै० शा० ३।४।३

जब पृथ्वी सूर्य से अलग हुई तब बहुत गर्म थी इस हेतु उसमे मनुष्यादि प्रजा का उत्पन्न होना वज्ञानं सम्मत नहीं होता – इस लए पृथ्वी का उ चत तापमान बनाने हेतु वर्षा की गयी और उ चत समय पर पृथ्वी और जल के संपर्क से मनुष्य आदि की उत्प त्त से तीन चतुर्युगी पूर्व वृक्ष औष धयां आदि उत्पन्न हुई –

या औ षधी पूर्वा जाता देमयस्त्रियुग पुरा।
मनै नु बभ्रूणामह शत धामानि सप्तच।।
(ऋग्वेद 10.97.1)

औष धयां मनुष्य से तीन चतुर्युगी पूर्व उत्पन्न होती हैं।

ये सद्धांतभूत नियम है जो वेदो में इस वज्ञानं के सम्बन्ध में पाये जाते हैं।

सद्धांतो को लेकर ब्राह्मण आदि ग्रंथो में वस्तार और क्रम आदि दिखलाया गया है।

तस्मादात्मन आकाश सम्भूत। आकाशाद्वायु। वायोरग्नि। अग्नेराप। अदभ्य पृथ्वी। पृ थव्या औषधय। औश्विम्यो न्नम्। अन्नात्पुरुष।
तै० उ० 2.1

अर्थ : परमात्मा की नि मत्तता से प्रकृति से आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु। वायु से अग्नि और अग्नि से जल। जल से पृथ्वी और पृथ्वी से औषधीय। इनसे अन्न और अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ।

यह एक वैज्ञानिक क्रम है जो उपनिषद में व र्णत है।

तो पृथ्वी में आदि सृष्टि के मनुष्य आदि प्रजा उत्पन्न करने के लए वसंत आदि ऋतू में गर्भ आदि का उ चत तापमान जब आया तब ईश्वर ने "वीर्य" को गर्भ (पृथ्वी) में धारण करवाया।

यहाँ वीर्य उस सामग्री का नाम है जो गर्भ में भ्रूण बनाने में उपयोगी पदार्थ वद्या है – जैसे वीर्य में अनेक गुण (प्रॉपर्टीज) होती हैं – वैसे ही रज में होते हैं – और गर्भ में उ चत तापमान होता है जिससे गर्भ में भ्रूण बनता है।

यदि हमें ४ लोगो का भोजन बनाना हो – तो नमक हल्दी मर्च आदि मसाला – सामान्य ही उपयोग होगा – परन्तु यदि ज्यादा लोगो का खाना बनाना हो तो अवश्य ही ज्यादा हल्दी मर्च आदि मसाला प्रयुक्त होगा – ठीक इसी प्रकार जब आदि सृष्टि के मनुष्य युवा अवस्था में उत्पन्न होते हैं – तब उत्तम और उ चत वीर्य से उस अवस्था के मनुष्य उत्पन्न होते हैं – यदि वज्ञान रज-वीर्य आदि के गुण (प्रॉपर्टीज) ठीक प्रकार जांच लेवे तो वज्ञानिक स्वयं स्वतंत्र रूप से वीर्य का निर्माण कर सकते हैं मगर ऐसा होना अभी हाल के अनुसन्धानियो द्वारा संभव नहीं मगर वज्ञानं ने इतनी तरक्की तो कर ही ली है की "कृत्रिम गर्भ" को बना सके। आने वाले कुछ वर्षो में शायद ये तकनीक ठीक काम करने लगे –

http://en.wikipedia.org/wiki/Artificial_uterus

ठीक इसी प्रकार यदि रज और वीर्य आदि के गुण धर्म (प्रॉपर्टीज) भी ज्ञात कर लेवे तो स्वतंत्र वीर्य – वज्ञानिक स्वयं निर्माण कर सकते हैं। और उ चत समय पर जब गर्भ (पृथ्वी) में मनुष्यादि देह में जीव का संयोग ईश्वर को करना होता है तब वद्युत अग्नि आदि से जीव का शरीर से संयोग होता है और जगत में मनुष्य आदि प्रकट होते हैं।

आपो ह यादवृहती वशवमायन गर्भदयाना जनयतिरग्निम्। (ऋग्वेद म. १० सूक्त १२१ मन्त्र ७) कारण भूत जले गर्भ में अग्नि को धारण करती हुई वश्व को प्रकट करती हैं।

अब कुछ लोग सोचेंगे – ये युवा अवस्था में ही क्यों आदि सृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं ? तो मत्रो इसका बहुत ही सुन्दर और सरल जवाब ऋ षवर दयानंद ने दिया है –
ऋ ष ने सत्यार्थ में इस सवाल का जवाब दिया है –

"आदि सृष्टि में मनुष्य युवावस्था में उत्पन्न होता है क्यों क जो बालक उत्पन्न होता तो उसके पालन के लए दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में उत्पन्न करता तो मैथुनी सृष्टि न होती। इस लए युवावस्था में ही आदि सृष्टि मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

तनिक वचार कया जाए तो ये बात सद्ध भी सही होती है और ऊपर के लेख में वैज्ञानिक और ता र्कक रूप से यही सत्य सद्धांत समझाने का प्रयास कया गया है =

 कसी भी लेख में भूलचूक होना स्वाभा वक है – कृपया लेख को पढ़कर अपने सुझाव और परामर्श अवश्य देवे – यदि कोई त्रुटि रह गयी हो तो क्षमा करे

लौटो वेदो की और

‘मैं और मेरा परमात्मा’-मनमोहन कुमार आर्य

NOVEMBER 25, 2014 2 COMMENTS

ओ३म्

‘मैं और मेरा परमात्मा’

एक शाश्वत प्रश्न है क मैं कौन हूं। माता पता जन्म के बाद से अपने शशु को उसकी बौद् धक क्षमता के अनुसार ज्ञान कराना आरम्भ कर देते हैं। जन्म के कुछ समय बाद से आरम्भ होकर ज्ञान प्राप्ति का यह क्रम वद्यालय, महा वद्यालय आदि से होकर चलता रहता है और इसके बाद भी नाना प्रकार की पुस्तकें, धर्मोपदेश, व्याख्यान, पुस्तकों का अध्ययन व स्वाध्याय तथा भन्न प्रकार की साधनाओं आदि से ज्ञान में वृद् ध होती रहती है। सब कुछ अध्ययन कर लेने के बाद भी यदि कसी श क्षत बन्धु से पूछा जाये क कृपया बतायें क आप कौन हैं या मैं कौन हूं, क्या हूं, कहां से माता के गर्भ में आया, फर मेरा जन्म हो गया, युवा व वृद्ध होने के बाद कसी दिन मेरी मृत्यु हो जायेगी। मृत्यु के बाद मेरा अस्तित्व रहेगा या नहीं। यदि नहीं रहेगा तो क्यों नहीं रहेगा और यदि रहेगा तो कहां व कस प्रकार का होगा, आदि प्रश्नों का समाधान कर दें, तो हम समझते हैं क आजकल की शक्षा में दी क्षत कसी व्यक्ति के लए इन साधारण प्रश्नों का समाधानकारक उत्तर देना सरल कार्य नहीं होगा। इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है क आजकल की शक्षा अधूरी व अपूर्ण हैं। इसी कारण से लोग आध्यात्मिक जीवन का त्याग कर भौतिक जीवन शैली को अपनाने को ववश हुए हैं। इसके लए हम तो यहां तक कहेंगे क हमारे सभी धर्माचार्य इस बात के दोषी हैं क उन्होंने देश वदेश में आत्मा सम्बन्धी सत्य ज्ञान को स्वयं भी प्राप्त नहीं कया और फर प्रचार की बात तो बाद की है। जो लोग इस बात का दावा करते हैं क वह इन प्रश्नों के उत्तर जानते हैं तो फर वह इनका प्रचार क्यों नहीं करते, क्यों वह भौतिक व आडम्बर पूर्ण जीवन में व्यस्त व तल्लीन हैं, तो इसका उत्तर नहीं मलता। वह ज्ञान कस काम का जिसका धारक व्यक्ति उसे अन्य कसी न तो दे और न प्रचार करें। वद्या तो दान देने से बढ़ती है और यदि उसे अपने तक सी मत कर दिया जाये तो व्यवहार में न होने के कारण वह स्वयं भी भूल सकता है और उसके बाद तो उसका वलुप्त होना अवश्यम्भावी है।

इन सभी प्रश्नों के उत्तर पहले वेद एवं वैदिक साहित्य के आधार पर जान लेते हैं। पहला प्रश्न क मैं कौन और क्या हूं, इसका उत्तर है क मैं एक जीवात्मा हूं जो अजन्मा, चेतन तत्व, सूक्ष्म, नित्य, अमर व अ वनाशी, एकदेशी, कर्मानुसार जन्म व मृत्यु के चक्र में फंसा हुआ, ईश्वर साक्षात्कार कर मुक्ति को प्राप्त होने वाला व मुक्ति की अव ध समाप्त होने पर पूर्व जन्म के अव शष्ट कर्मों का फल भोगने के लए जन्म धारण करने वाला है। मेरी यह सत्ता ईश्वर व मूल प्रकृति से सर्वथा भन्न व स्वतन्त्र है। माता के गर्भ में आने में ईश्वर की प्रेरणा काम करती है। ईश्वर की प्रेरणा से पहले जीवात्मा जो पूर्व जन्म की कसी योनि में मृत्यु को प्राप्त कर अपने कर्मानुसार नये जन्म की प्रतीक्षा में है, पता के शरीर में आता है। सन्तानोत्प त्त से पूर्व गर्भाधान के अवसर पर यह पता के शरीर से माता के शरीर में आता है। माता के शरीर या गर्भ में प्रसव की अव ध तक रहकर यह पुत्र या पुत्री के रूप में जन्म लेता है। शास्त्र यह भी बताते हैं क जब हमारी मृत्यु होती है, उस समय यदि हमारे पुण्य कर्म पाप कर्मों के बराबर या अ धक होते हैं तो मनुष्य जन्म और यदि पुण्य कर्म कम होते हैं तो फर पशु, पक्षी व अन्य निम्न योनियों में ईश्वर के द्वारा जन्म मलता है। इस प्रकार से माता के गर्भ में आने के रहस्य का समाधान हमारे ऋ षयों ने शास्त्रों में कया है जो पूर्णतः तर्क व युक्ति संगत है। हमारी जब भी मृत्यु होगी तो हमारे अजन्मा व अमर होने के कारण हमारा अस्तित्व समाप्त नहीं होगा अ पतु हम शरीर से निकल कर इस वायु मण्डल व आकाश में एक जीव के रूप में सर्वव्यापक परमात्मा के साथ रहेगें। यह निवास हमें ईश्वर द्वारा पुनः जन्म देने के लए हमारी भावी माता के गर्भ में भेजने के समय तक रहेगा। यहां यह प्रश्न भी कया जा सकता है क यदि ऐसा है तो फर हमें व अन्यों को पूर्व जन्म की बातें याद क्यों नहीं रहतीं। इसका उत्तर है क हमारा जो मनुष्य जीवन है उसमें हम एक समय में एक ही बात को स्मरण रख सकते हैं। क्यों क हम वर्तमान में इस जन्म की बातों व समृतियों से भरे हुए रहते हैं, इस कारण पूर्व जन्म की बातें स्मरण नहीं आतीं। दूसरा कारण है क मृत्यु के बाद हमारा पुराना शरीर व उसमें हमारा जो मन, बुद् ध व चत्त था वह इस जन्म में बदल जाता है और उस जन्म से इस जन्म में बोलना सीखने की लम्बी अव ध में हम पुरानी बातों को भूल जाते हैं। यदि वचार करें तो हमें आज की ही बातें याद नहीं रहती। हम जो बोलते हैं, यदि कुछ मनट वा एक घंटे बाद उसे पूरा का पूरा दोहराना हो तो हम पूर्णतः वही शब्द और वही वाक्य दोहरा नहीं सकते हैं। इसका कारण जो शब्द हम बोलते हैं, उसका क्रम साथ-साथ भूलते जाते हैं। हमने प्रातः क्या भोजन कया, दिन में क्या कया, कन- कन से मले, क्या बातंे कीं, क्या पढ़ा, यदि कुछ लखा तो क्या लखा, उसे पूरा का पूरा, वैसा का वैसा, क्रमशः नहीं दोहरा सकते। रूक रूक कर याद करते हैं फर भी बहुत सी बातें व उनका क्रम भूल जाते हैं। पूर्व दिनों व उससे पहले की घटनाओं को याद करने की बात ही कुछ और है। जब हमें अपने पूर्व के एक सप्ताह के व्यवहार का पूरा ज्ञान व स्मृति नहीं होती तो यदि पूर्व जन्म की स्मृति भी न रहे तो यह कौन से आश्चर्य की बात है। यह साध्य कोटि में है, असम्भव नहीं। अतः पूर्व जन्म के बारे में यह युक्ति क हमें पूर्व जन्म की बातें याद क्यों नहीं होती, कोई अ धक बलवान तर्क नहीं हैं। अतः इस चन्तन से हमें अपने स्वरूप का ज्ञान हो गया जो क वेद शास्त्र सम्मत, बुद् ध, युक्ति आदि से प्रमा णत है।

अब हम अपने परमात्मा को भी जानने का प्रयास करते हैं। हम सभी अपने चारों ओर माता- पता, कुटुम्बी, मत्रों और सामाजिक बन्धुओं को देखते हैं। इसके साथ हम पृ थवी, सूर्य,

चन्द्रमा, जल, वायु, अग्नि आदि भन्न प्रकार के तत्वों को भी देखते हैं। इन्हें देख कर वचार आता है क सूर्य, चन्द्र व पृथवी आदि व मनुष्य, पशु व पक्षी, वनस्पति, नदी, जल, वायु, अग्नि आदि को कसने बनाया है? मनुष्य व अन्य कसी योनि के प्रा णयों ने तो बनाया नहीं? कस सत्ता के द्वारा यह बनाये गये हैं, इसका वचार कर निर्णय करना आवश्यक होता है। इसका उत्तर है क जिस सत्ता ने हमें बनाया है, उसी ने वृक्ष आदि वनस्पतियों व इस सारे जगत एवं इसके सूर्य, पृथवी, चन्द्र आदि ग्रह-उपग्रहादि सहित उन सभी सांसारिक पदार्थों को भी बनाया है जो क कोई मनुष्य नहीं बना सकता। ऐसे पदार्थ जो संसार में हैं परन्तु मनुष्यों द्वारा नहीं बनाये जा सकते हैं वह अपौरूषेय रचनायें कहे जाते हैं। इनकी रचना या उत्प त्त ईश्वर व परम-पुरूष परमात्मा से होती है। अत यहां पुनः वही प्रश्न उत्पन्न होता है क यदि उसने बनायें हैं तो वह दिखाई क्यों नहीं देता। उसका उत्तर भी यही है क सर्वातिसूक्ष्म होने से वह दिखाई नहीं देता। आंखों से केवल स्थूल पदार्थ ही दिखाई देते हैं, सूक्ष्म व परमसूक्ष्म पदार्थ नहीं। वायु और इसमें वद्यमान अणु-परमाणु कसी को कहां दिखाई देते हैं फर भी इनका अस्तित्व है और सभी इसको स्वीकार करते हैं। त्वचा से स्पर्श होने पर वायु की अनुभूति होती है। इसी प्रकार ईश्वर का दिखाई देना भी उसके कार्यों को देखकर कया जाता है। यदि हम एक सुन्दर सा फूल देखते हैं तो हमें उसकी सुन्दरता व सुगन्ध आक र्षत करती है। हम कतना ही प्रयास कर लें, हम उसी प्रकार की रचना नहीं कर सकते। अतः रचना को देखकर रचयिता का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ता है।

यहां एक वज्ञान व दर्शन का नियम भी कार्य करता है जिसे यदि समझ लया जाये तो गुत्थी हल हो जाती है। नियम यह है क कसी भी पदार्थ के गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं। हम फूल के रूप में फूल के रंग-रूप का ही तो दर्शन करते हैं। परन्तु यह तो रंग-रूप व बनावट तो उस फूल के गुण है न की फूल। गुणों का दर्शन हो रहा है न की गुणी का। इसके समान गुण हमें जहां मलते हैं हम उसे अमुक नाम का फूल कह देते है परन्तु हमें उस फूल नामी गुणी का प्रत्यक्ष नहीं होता। इसी प्रकार से ईश्वर के गुणों को देखकर उसकी पहचान की जाती है। जैसे की सूर्य में इसकी रचना को देखकर ईश्वर का ज्ञान होता है। सूर्य की रचना उस परमात्मा नामी गुणी का गुण है। इसी प्रकार से फूल को देखकर इसके रचयिता ईश्वर का ज्ञान ववेकशील मनुष्यों को होता है। ऐसा ही सभी जगहों पर माना जा सकता है। दर्शनकार ने ईश्वर की परिभाषा देते हुए कहा है क जिससे यह संसार जन्म लेता है, जो इसको चलाता है और जो अव ध पूरी होने पर इसका संहार या प्रलय करता है, उसी को ईश्वर कहते हैं। इसी प्रकार से कसी वस्तु के बनाने में तीन कारण होते हैं। पहला नि मत्त कारण, दूसरा उपादान कारण और तीसरा साधारण कारण कहलाता है। एक घड़े के निर्माण में कुम्हार नि मत्त कारण, मट्टी उपादान कारण व कुम्हार का चाक व उन्य उपकरण साधारण कारण कहे जाते हैं। इसी प्रकार से संसार को बनाने में ईश्वर नि मत्त कारण, मूल प्रकृति उपादान कारण है। मनुष्य को अल्पज्ञ व अल्पशक्तिवान होने से साधारण कारणों, उपकरण आदि का सहारा लेना पड़ा है परन्तु ईश्वर के सर्वव्यापक, सर्वातिसूक्ष्म, सर्वान्तरर्यामी व सर्वशक्तिमान होने के कारण उसे साधारण कारणों के रूप में उपकरणों आदि की आवश्यकता नहीं होती। इससे ज्ञात होता है क संसार की उत्प त्त ईश्वर से होती है। इसको यदि वस्तृत रूप से जानना हो तो कह सकते हैं क ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, नि र्वकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार,

सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, प वत्र और सृष्टिकर्ता है। यह ईश्वर का स्वरूप व उसके गुण आदि हैं। यही हमारे परमात्मा का भी स्वरूप है। इसी परमात्मा के द्वारा हमारा यह संसार बना है। इसी से हमारा जन्म व मृत्यु और पुनर्जन्म होता है। हमें हमारे कर्मानुसार जन्म देने के लए हम ईश्वर के ऋणी है। इस ऋण को चुकाने के लए हमें ईश्वर के प्रति कृतज्ञता का भाव रखकर उसके गुणों का चन्तन व ध्यान करना है जिससे हमें सत्य व असत्य का ज्ञान हो सके। सत्य का आचरण ही धर्म कहलाता है जिसे वेद व सत्यार्थ प्रकाश आदि शास्त्रों को पढ़कर जाना जा सकता है। आजकल हमारे देश व वश्व में सत्य के साथ असत्य ज्ञान की पुस्तकें भी धर्म ग्रन्थ के नाम से प्राप्तव्य हैं। साधारण ही नहीं अ पतु श क्षत जनों के लए भी सत्य का निर्धारण करना कठिन कार्य है। इसके लए वेद, उपनिषद तथा दर्शन आदि ग्रन्थों सहित सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भू मका व संस्कार व ध आदि ग्रन्थ परम सहायक हैं। यदि हम इनका निय मत स्वाध्याय करें तो फर हमें कहीं कसी गुरू के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञान हमारी आत्मा में स्वतः उतर आता है। इसका लाभ लेकर हम सत्य का निर्धारण कर सत्य का पालन कर सकते है और अपने जीवन को सफल कर सकते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला**-2**

देहरादून**-248001**

फोनः **09412985121**

श्रेष्ठ मानव जीवन का आधार – 'वैदिक संस्कार'

NOVEMBER 16, 2014 LEAVE A COMMENT

ओ३म्

श्रेष्ठ मानव जीवन का आधार – 'वैदिक संस्कार'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

संस्कार की चर्चा तो सभी करते व सुनते हैं परन्तु संस्कार का शब्दार्थ व भावार्थ क्या है? संस्कार कसी अपूर्ण, संस्काररहित या संस्कारहीन वस्तु या मनुष्य को संस्कारित कर उसका इच्छित लाभ लेने के लए गुणवर्धन या अ धकतम मूल्यवर्धन value addition करना है। यह गुणवर्धन व मूल्यवर्धन भौतिक वस्तुओं का कया जाये तो वैल्यू एडीसन कहलाता है और यदि मनुष्य का करते हैं तो इसे ही संस्कार कह कर पुकारते हैं।

मनुष्य जन्म के समय शशु शारीरिक बल व ज्ञान से रहित होता है। पहला कार्य तो अच्छी प्रकार से उसका पालन-पोषण द्वारा शारीरिक उन्नति करना होता है। इसे शशु का शारीरिक संस्कार कह सकते हैं। यह कार्य माता के द्वारा मुख्य रूप से होता है जिसमें पता व परिवार के अन्य लोग भी सहायक होते हैं। बच्चा माता का दुग्ध पीकर, कुछ माह पश्चात स्वास्थ्यय व पुष्टिवर्धक भोजन कर तथा व्यायाम आदि के द्वारा शारीरिक वकास व वृद् ध को प्राप्त होता है। मनुष्य की पहली उन्नति शरीर की उन्नति होती है और इसके लए जो कुछ भी कया जाता है वह भी संस्कार ही हैं। शारीरिक उन्नति के पश्चात सन्तान के लए सु शक्षा की आवश्यकता है। शक्षा रहित सन्तान शूद्र, पशु वा ज्ञानहीन कहलाती है और शक्षा प्राप्त कर उसकी संज्ञा द् वज अर्थात ज्ञानवान होती है और वह अपने प्रारब्ध व इस जन्म के आचार्यों द्वारा प्रदत्त ज्ञान से ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य बनकर देश व समाज की उन्नति में योगदान करता है। इस प्रकार से संस्कार की यह परिभाषा सामने आती है क जीवन की उन्नति जो क धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति का साधन है, के लए जो-जो शक्षा, वेदाध्ययन आदि कार्य व क्रयाकलाप कये जाते हैं वह संस्कार कहलाते हैं।

चार वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ईश्वरीय ज्ञान हैं जो क सृष्टि के आरम्भ में चार ऋ षयों क्रमशः अग्नि, वायु, आदित्य व अं गरा को वैदिक भाषा संस्कृत के ज्ञान सहित दिये गये थे। इन वेदों में ईश्वर ने वह ज्ञान मनुष्यों तक पहुंचाया जो आज 1,96,08,53,114 वर्ष बाद भी सुलभ है। यह वेदों का ज्ञान ही मनुष्य की समग्र उन्नति का आधार है। इस ज्ञान को माता- पता और आचार्यों से पढ़कर मनुष्य की समग्र शारीरिक, बौद् धक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति होती है। उदाहरण के रूप में हम आदि पुरूष ब्रह्माजी, मह र्ष मनु, पतजं ल, क पल, कणाद, गौतम, व्यास, जै मनी, राम, कृष्ण, चाणक्य, दयानन्द आदि ऐतिहा सक महापुरूषों को ले सकते हैं जिनकी शारीरिक, बौद् धक और आत्मिक उन्नति का आधार वेद था। वेदाध्ययन यद्य प वेदारम्भ और उपनयन इन दो संस्कारों के अन्तर्गत आता है परन्तु इन दोनों संस्कारों का महत्व अन्यतम है। नित्य आर्ष ग्रन्थों के स्वाध्याय का भी जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। वेदों के आधार पर जिन सोलह संस्कारों का वधान है वह क्रमशः गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, ववाह-गृहस्थ, वानप्रस्थ-संन्यास व अन्त्येष्टि संस्कार हैं। इन संस्कारों को करने से मनुष्य की आत्मा सुभू षत, संस्कारित एवं ज्ञानवान होती है और जीवन के चार पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त कर सकती है। इनके साथ नित्य प्रति पंचमहायज्ञों यथा सन्ध्योपासना, दैनिक अग्निहोत्र, पतृयज्ञ, अति थयज्ञ एवं ब लवैश्वदेव यज्ञ का करना अनिवार्य है। इन संस्कारों को वस्तार से जानने के लए मह र्ष दयानन्द सरस्वती कृत संस्कार व ध ग्रन्थ और इसके अनेक व्याख्या ग्रन्थ जिनमें संस्कार भास्कर और संस्कार चन्द्रिका आदि मुख्य हैं, का अध्ययन लाभप्रद होता है।

वैदिक धर्म और संस्कृति में वेदों व वैदिक साहित्य का अध्ययन कए हुए युवक व युवति का ववाह योग्य सन्तान और देश के श्रेष्ठ नागरिकों की उत्प त्त के लए होता है। संसार के श क्षत और अ श क्षत सभी माता- पता अपनी सन्तानों को स्वस्थ, दीर्घायु, बलवान,

ईश्वरभक्त, धर्मात्मा, मातृ- पतृ-आचार्य-भक्त, वद्यावान, सदाचारी, तेजस्वी, यशस्वी, वर्चस्वी, सुखी, समृद्ध, दानी, देशभक्त आदि बनाना चाहते हैं। इसकी पूर्ति केवल वैदिक धर्म के ज्ञान व तदनुसार आचरण से ही सम्भव है। आज की स्कूली शक्षा में वह सभी गुण एक साथ मलना असम्भव है जिससे ऐसे योग्य देशभक्त नागरिक उत्पन्न हो सकें। केवल वैदिक शक्षा से ही इन सब गुणों का एक व्यक्ति में होना सम्भव है जिसके लए अनुकुल सामाजिक वातावरण भी आवश्यक है। हमारे सभी वैदिक कालीन और क लयुग में मह र्ष दयानन्द इन्हीं वैदिक संस्कारों में दी क्षत महात्मा थे। वेदों के ज्ञान के कारण ही हमारे देश में ऋ ष, मह र्ष, योगी, सन्त आदि हुए हैं। अन्य देशों में यह सब गुण कसी एक व्यक्ति में पूरी सृष्टि के इतिहास में नहीं देखे गये हैं। हमारे पौरा णक मत्र व बन्धु वेदों के अध्ययन व आचरण को त्याग कर पुराण सम्मत मूर्तिपूजा, अवतारवाद, फ लत ज्योतिष, छुआछूत, जन्म पर आधारित जातिवाद जैसे अवैदिक व अनु चत कृत्यों को करने में समय लगाते हैं। इन अवैदिक कृत्यों का जीवन से निराकरण केवल पक्षपातरहित होकर सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर सद ववेक से कार्य करने पर ही हो सकता है।

सन् 1947 में भारत वदेशी दासता से स्वतन्त्र हुआ। आवश्यकता थी क देश में सर्वत्र, आध्यात्मिक जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा हो, परन्तु इसके वपरीत धर्मनिरपेक्षता का सद्धान्त बना जहां ईश्वर के सत्य ज्ञान वेदों को प्रतिष्ठा नहीं मली। सभी मतों की पूजा पद्धतियां अलग-अलग हैं। इन्हें संस्कारों व कुसंस्कारों का मश्रण कहा जा सकता है। अलग-अलग उपासना पद्धतियों से परिणाम भी निश्चित रूप से अलग-अलग ही होंगे। सभी उपासना पद्धतियों से धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति होना असम्भव है। वह केवल वैदिक उपासना पद्धति से ही सम्भव है। अतः संस्कारों को केन्द्र में रखते हुए अपने जीवन को सत्य को ग्रहण करने वाला, असत्य को निरन्तर व हर क्षण छोड़ने के लए तत्पर रहने वाला, सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य व्यवहार करने वाला बनाना होगा। यह संस्कारों से ही सम्भव है और यह संस्कार मर्यादा पुरूषोत्तम राम व योगश्वर कृष्ण सहित हमारे प्राचीन ऋ ष-मुनियों एवं मह र्ष दयानन्द सरस्वती में रहें हैं जिनका हमें अनुकरण करना है। इन महापुरूषों के जीवन चरित का अध्ययन कर उनके गुणों को आत्मसात कर सुसंस्कारित हुआ जा सकता है।

निष्कर्ष यह है क संस्काररहित मनुष्य पशु के समान होता है। अतः प्रत्येक मनुष्य को संस्कार व ध का गहन अध्ययन कर संस्कारों की व ध और उनके महत्व को जानना व समझना चाहिये। वेदाध्ययन कर वेदानुसार आचरण करना चाहिये। शारीरिक उन्नति पर ध्यान देना चाहिये। शुद्ध शाकाहारी व पुष्टिकारक भोजन करते हुए संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिये।

–मनमोहन कुमार आर्य

पताः **196** चुक्खूवाला-**2**

देहरादून-**248001**/फोनः**0941298512**

IMPORTANCE OF SPEECH वाक IN VEDAS

JUNE 22, 2014 LEAVE A COMMENT

Importance of speech वाक in Vedas
Author : Subodh Kumar
Human speech RV10.125,reiterated as AV4.30

ऋ ष:- अथर्वा, देवता:- वाक

1.अहं रुद्रे भर्वसु भश्चराम्यहमादित्यैरुत वश्वदेव्यैः |

अहं मत्रावरुणोभा बिभर्य मंद्राग्नी अहमश्विनोभा ||

अथर्व **4.30.1,**ऋ**10.125.1**

मैं वाक शक्ति पृ थवी के आठ वसुओं , ग्यारह प्राण.आदित्यै बारह मासों, वश्वेदेवाः ऋतुओं और मत्रा वरुणा दिन और रात द्यौलोक और भूलोक सब को धारण करती हूं. (मानव सम्पूर्ण वश्व पर वाक शक्ति के सामर्थ्य से ही अपना कार्य क्षेत्र स्था पत करता है)

2. अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां च कतुषो प्रथमा य ज्ञयानाम्|

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयंतः ||

अथर्व **4.30.2** ऋ**10.125.3**

मैं (वाक शक्ति) जगद्रूप राष्ट्र की स्वा मनी हो कर धन प्रदान करने वाली हूँ , सब वसुओं को मला कर सृष्टि का सामंजस्य बनाये रख कर सब को ज्ञान देने वाली हूँ. यज्ञ द्वारा सब देवों मे अग्रगण्य हूँ. अनेक स्थानों पर अनेक रूप से प्रतिष्ठित रहती हूँ.

3.अहमेव स्वय मदं वदा म जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम् |

तं तमुग्रं कृणो म तं ब्रह्माणं तमृ षं तं सुमेधाम् ||

अथर्व **4.30.3**ऋ**10.125.5**

संसार में जो भी ज्ञान है देवत्व धारण करने पर मनुष्यों में उस दैवीय ज्ञान का प्रकाश मैं (वाक शक्ति) ही करती हूँ. मेरे द्वारा ही मनुष्यों में क्षत्रिय स्वभाव की उग्रता, ऋ षयों जैसा ब्राह्मण्त्व और मेधा स्था पत होती है.

4.मया सोऽन्नम त यो वपश्यति यः प्रणीति य ईं शृणोत्युक्तम् |

अमन्तवो मां त उप क्षयन्ति श्रु ध श्रुत श्रद्धेयं ते वदा म ||

अथर्व**4.30.4**ऋ**10.125.4**

मेरे द्वारा ही अन्न प्राप्ति के साधन बनते हैं, जो भी कुछ कहा जाता है, सुना जाता है, देखा जाता है, मुझे श्रद्धा से ध्यान देने से ही प्राप्त होता है. जो मेरी उपेक्षा करते हैं, मुझे अनसुनी कर देते हैं, वे अपना वनाश कर लेते हैं.

5.अहं रुद्राय धनुरा तनो म ब्रह्मद् वशे शरवे हन्तवा उ ।

अहं जनाय सुमदं कृणोभ्यहं द्यावापृ थवी आ ववेश ॥

अथर्व **4.30.5ऋ10.125.6**

असमाजिक दुष्कर्मा शक्तियों के वरुद्ध संग्राम की भू मका मेरे द्वारा ही स्था पत होती है. पा थंव जीवन मे ववादों के निराकरण से मेरे द्वारा ही शांति स्था पत होती है.

6. अहं सोममाहनसं वभर्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।

अहं दधा म द्र वणा ह वष्मते सुप्राव्या3 यजमानाय सुन्वते ॥

अथर्व **4.30.6 ऋ10.125,2**

श्रम, उद्योग, कृ ष, द्वारा जीवन में आनंद के साधन मेरे द्वारा ही सम्भव होते हैं .जो धन धान्य से भरपूर समृद् ध प्रदान करते हैं.

7. अहं सुवे पतरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्व1न्तः समुद्रे ।

ततो व तिष्ठे भुवनानि वश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृश्या म ॥

अथर्व **4.30.7ऋ10.125.7**

मैं अंतःकरण में गर्भावस्था से ही पूर्वजन्मों के संस्कारों का अपार समुद्र ले कर मनुष्य के मस्तिष्क में स्था पत होती हूँ पृथ्वी तथा द्युलोक के भुवनों तक स्था पत होती हूँ.

8.अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि वश्वा ।

परो दिवा पर एना पृ थव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ॥

अथर्व **4.30.8 ऋ 10.125.8**

मैं ही सब भुवनों पृथ्वी के परे द्युलोक तक वायु के समान फैल कर अपने महत्व को वशाल होता देखती हूँ ।

नवजीवन-उत्पादक वैदिक शक्षाये

JANUARY 1, 2014 LEAVE A COMMENT

नवजीवन-उत्पादक वैदिक शक्षाये

लेखक – श्री डॉक्टर केशवदेव शास्त्री

भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति का प्रधान अंक ब्रह्मचर्य की शक्षा था | ब्रह्मचर्य पर ही संस्कारो का आधार था | ब्रह्मचर्य पर ही योग की ऋ ष सद् धयो का दारोमदार था | समय था जब वश्वास पूर्वक ऋ ष मह र्ष ब्रह्मज्ञान के जिज्ञासुओ को ब्रह्मचर्य के धारण करने और तदन्तर प्रश्नों के उत्तर मांगने का आदेश दिया करते थे | समय की निराली गति ने भारत वर्ष के निवा सयों की वह दुर्दशा की क जंहा नित्य प्रति लोग ब्रह्मचर्य के गीत गाते थे, वाही बाल ववाह का शकार बन रहे है | सुश्रुत में बताया है क यदि २५ वर्ष से न्यून आयु का पुरुष और १६ वर्ष से न्यून क कन्या ववाह करेंगे तो प्रथम तो कु क्ष में ही गर्भ क हानि होंगी | यदि बालक उत्पन्न हो भी जावे तो चरकाल पर्यंत जीवेंगा नहीं और यदि जीता भी रहा तो दुर्बलेन्द्रिय होंगा |

पाठक गण ! वचारिये, आज हमारी क्या स्ति थ है ? क्या लाखो बालक बा लकाये शशु जीवन धारण कर मर नहीं रहे और यदि जीते भी है तो करोडो नर नारी दुर्बलेन्द्रिय बन रोगों में ग्र सत दिखाई देते है | कतनी बार हम लोगो ने इन जातीय त्रुटियों पर आंसू बहाये है परन्तु निदान ही जब भूल युक्त हो तो लाभ क आशा कैसे हो सकती है ?

वेद ने तो स्पष्ट कहा है क :-

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं वन्दते पतिम |

अंडवान ब्रह्मचर्य्येणाश्वो घासम जिघिर्षति ||

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अ धकार केवल ब्रह्मचारी पुरुष और ब्रह्मचारिणी कन्या को ही प्राप्त है |

शाकभोजी बैल और घोड़े ब्रह्मचर्य क शक्ति द्वारा बोझ को खींचते और वजय को प्राप्त करते है | जब पशु ब्रह्मचर्य क महिमा से कतनी शारीरिक, मान सक और आत्मिक उन्नति कर सकते है, इसका कोई परिमाण नहीं | वेद में तो दर्शाया है क कोई राजा योग्य व्यक्ति बन उतमता से राज्य भी नहीं कर सकता जो पूर्ण ब्रह्मचारी न हो | यथा :-

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वरक्षति |

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिण मछ्ते ||

ब्रह्मचर्य और तपस्या द्वारा राजा राज्य की वशेष रीति से रक्षा करता है और आचार्य ब्रह्मचर्य द्वारा ब्रह्मचारी तथा तपस्वी होना चाइये तभी उसमे रक्षक की क्षमता उत्पन्न हो सकती है |

जो महात्मा आचार्य बनना चाहे उसे प्रथम स्वयं ब्रह्मचारी बनना उ चत है | ब्रह्मचर्य की वृति से वह मेधावी बन ब्रह्मज्ञान का उपदेश कर सकता है |

ब्रह्मचर्य का कसी समय इतना प्रचार था क इस देश में आने वाले महापुरषों ने इस शक्षा का प्रचार सर्वत्र भूगोल में कर दिया था |आर्यो का तो ब्रह्मचर्य में यहाँ तक वश्वास था क प्रत्येक तपस्वी ब्रह्मचर्य को धारण करता और मृत्यु पर वजय पाने की कामना कया करता था |

अथर्ववेद के इसी अध्याय में व र्णत है क-

इन्द्रो तपसा देवा मृत्यु मुपाघत |

इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत ||

ब्रह्मचर्य और ताप के द्वारा देवो ने मृत्यु को नष्ट कर दिया |ब्रह्मचर्य द्वारा ही इन्द्र देवो के लए सुख लाया है |वेद में एक सौ वर्ष पर्यंत जीने का आदेश मलता है |आत्मा सुखी तभी रहता है जब इन्द्रिय स्वस्थ हो जब सौ वर्ष पर्यंत वह सबल रहकर अपने अपने कर्त्तव्य का यथो चत पालन करे |क्यों क जीवात्मा ब्रह्मचर्य द्वारा ही इन्द्रियों को सुखी बना सकता है |स्वस्थ स्त्री पुरुष ही आनंद मय जीवन का उपभोग कर सकते है |

इस प्रकार वेद में ब्रह्मचर्य क महिमा पर अनेक वेद मंत्रो द्वारा उपदेश दिया गया है | ब्रह्मचर्य की अव ध २४, ३६, और ४८ वर्ष पुरषों के लए और ३६, १८, और २४ वर्ष स्त्रियों के लए बतलाया गया है |

४८ वर्ष का ब्रह्मचर्य उत्तम बताया गया है, २५ वर्ष का निकृष्ट परन्तु हम है की अपने बालक बा लकाओ को २४ और १६ वर्ष की आयु तक पहुचने ही नहीं देते क उनके ववाहों क चंता करने लगते है |वेदानुसार तो वर कन्या को पारस्परिक स्वयम्वर रीति द्वारा ववाह क आज्ञा है |आज पौरा णक संसकारो में फंसी हुई आर्य संतान वर और कन्या के अ धकार छीन माता- पता को ववाह का अ धकार दिए बैठे है |अनपढ़ पठान ब्रह्मचर्य द्वारा हृष्ट पुष्ट संतान पैदा कर सकते है परन्तु वेदों के मानने वाले आर्य दुर्बलेन्द्रिय बन अपने शरीरों को बोदा और निकम्मा बना रहे है |आवश्यकता है क आर्य नर नारी वेद की ब्रह्मचर्य सम्बन्धी शक्षा की और अ धक ध्यान दे और अपने अंदर वश्वास धारण करे की ब्रह्मचारी अमोघ वीर्य होता है |ऋतुगामी गृहस्थी कर संतान उत्पन्न कर सकते है |इस लए ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी बन वह अपने शरीरों को सदृढ़, सबल और हृष्ट पुष्ट रखे ता क उनमे सभी शक्तियो का प्रादुर्भाव हो और वह निरंतर स्वस्थ चत्त हो एक सौ वर्ष पर्यंत स्वाधीन और आनंदमय जीवन को धारण कर सखे |